सांस्कृतिक कहानियाँ

भाग ११




eGangotri Digital
Preservation Foundation

सांस्कृतिक कहानियाँ

[भाग - ११]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'



प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवा संस्थान
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक | श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान

प्रकाशन-तिथि | नृसिंह जयन्ती, वि सं० २०३६
११ मई, १९७९

प्रथम संस्करण | ५००० प्रतियाँ

मुद्रक | राधा प्रेस,
गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SANSKRITIK KAHANIYAN—Part XI

—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य — दो रुपया मात्र

प्राक्कथन

अनेक वर्षों तक 'कल्याण' (गोरखपुर) में मेरी कहानियाँ निकलती रहीं हैं। बहुत लोगोंका आग्रह था कि इन्हें संकलित कर दिया जाय । यह संकलन अब हो सका है और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान प्रकाशनसे 'सांस्कृतिक कहानियाँ' नामसे अनेक भागोंमें निकल रहा है। अब तक ११ भाग छप चुके हैं।

इस संग्रहमें 'कल्याण' में निकली कहानियाँ तो हैं ही, अन्यत्र छपी कहानियाँ भी हैं।

मैंने कहानी लिखना ही प्रारम्भ किया किसी तथ्यको समझानेके लिए। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक विषयोंमें लेखोंके द्वारा जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें मैंने कहानी द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिहास, भूगोल अथवा आधिदैवत जगतका भी वर्णन जो दिया गया है, यथासम्भव स्पष्ट है। इनसे भी पाठकको परिचित कराया गया है।

घटनाएँ और पात्र सभी कल्पित नहीं भी हैं— तो भी उनको सत्य बतलानेका प्रयत्न नहीं हैं। अतः घटनाओं तथा नामोंके पीछे मत पड़ें, कहानीमें प्रतिपादित तथ्यको ग्रहण करें।

कलाके लिए नहीं, सत्प्रेरणाके लिए लिखी गयी इन कहानियोंसे पाठकको लाभ हो तो मेरा प्रयत्न सफल है ; भले कहानी-कला इनमें न मिलती हो।

अच्छा होगा कि इन कहानियोंके तीन भाग निकल जानेके बाद आप इन्हें मँगाया करें, इसमें डाक-व्यय कम लगेगा। नहीं तो आजकल डाक-व्यय पुस्तकके मूल्यसे अधिक हो गया है। अग्रिम भेजते समय आप जैसा लिखेंगे वैसी व्यवस्था कर दी जायगी।

—'चक्र'

श्रीकृष्ण जन्मस्थान,

मथुरा

अनुक्रमणिका

भक्ति पञ्चम पुरुषार्थ

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
(गीता ६.४७)

मन्दराचल पार्थिव पर्वत नहीं है। इस दिव्य गिरिपर सुर भी संकोच एवं श्रद्धाके साथ ही उतरते हैं। काकभुशुण्डिकी अनेक कल्पोंसे यह साधना-स्थली— मायाका आच्छन्न करनेवाला प्रभाव इसके समीप नहीं आता। त्रेताके अन्तमें जब मर्यादापुरुषोत्तम अपने दिव्यधाम पधारे, पवनकुमारने भी पृथ्वीकी अपेक्षा इस पर्वतपर ही अधिक रहना प्रारम्भ कर दिया। वे भी इसकी गुफाओंमें, सघन काननोंमें आराध्यका चिन्तन करते नित्य तन्मय रहने लगे। वैसे तो जहाँ-जहाँ धरापर श्रीरामका यशोगान होता है, अपने एक रूपसे वे उपस्थित रहते ही हैं।

दिव्य लता-तरु पुष्पित-पल्लवित, फलमधुर वन-भूमि और रत्नोज्ज्वल गुफाएं। अब तो न केवल पशुओंका नाद, पक्षियोंका कलरव, भ्रमरोंका गुञ्जन ही, अपितु निर्झरोंका शब्द भी एक ही स्वर अहर्निश उठाया करता है—

राम राम राम सीता राम राम राम।
राम राम राम सीता राम राम राम।

पुलक-प्रफुल्लित-स्वर्णाङ्ग, अजस्र-स्रवित-लोचन पवनपुत्र आजकल इस क्षीराब्धिधौतचरण उत्तुङ्ग शिखरको धन्य करते हैं। जैसे उनके अन्तरका आह्लाद पर्वतके कण-कणको रसार्द्र किये दे रहा है। पत्ता-पत्ता आनन्द-

नर्तन कर रहा है उनके स्वरके साथ।

गगनसे जैसे मयंक भूमिपर आ जाय, इस प्रकार मन्दरके शिखरपर उतर आया अमितौजा। वह उतर तो आया किंतु उसे स्मरण नहीं कि क्यों आया है वहाँ। उसके पद कब नृत्य करने लगे, कब उसका कण्ठ उस संकीर्तन-ध्वनिका साथ देने लगा—उसे कुछ स्मरण नहीं। वह तो आत्मविस्मृत हो गया क्षणार्धमें।

'तुम्हारा जन्म अयोध्यामें हुआ है।' भगवान् ब्रह्माने उससे कहा था। 'ज्ञानियोंके मुकुटमणि श्रीआञ्जनेय ही तुम्हारे गुरु हो सकते हैं। मन्दराचलपर तुम उनके दर्शन कर सकते हो।'

वह हिमालयके गर्भमें स्थित दिव्यपुरी कलापग्रामसे ब्रह्मलोक गया था और सृष्टिकर्ताने उसे मन्दराचलपर भेज दिया; किंतु वह तो भूल ही गया कि क्यों वह यहाँ आया और उसे क्या करना है। मन्दराचलका वायुमण्डल वैसे भी हृदयको भक्ति-विभोर कर देनेवाला है। काक-भुशुण्डिजीका प्रभाव ही वहाँ एक अद्भुत उन्मद वातावरण बनाये रखता था और जबसे श्रीरामदूत वहाँ आये हैं देवताओं और गन्धर्वोंमें तो यह प्रवाद प्रसारित हो गया है—'स्वर्गमें रहना हो तो मन्दरगिरिका प्रकाश जहाँतक जाता है, उतने क्षेत्रसे दूर रहो। वहाँ जो गया वह कदाचित् ही लौटकर आयेगा। देवर्षि नारद-जैसे परि-व्राजकोंका सम्प्रदाय वह पर्वत बढ़ाने लगा है।'

कलापग्रामका अविचल योगी अमितौजा, वह ब्रह्म-

लोकसे चला था तो किसी अप्सराने कहा था—' मुनिवर ! यह गाम्भीर्य बनाये रखना हो तो मन्दरका मार्ग मत अपनाना !'

अप्सरा—अपवर्गके साधकोंके पथमें विघ्नके रूपमें ही अमितौजा इस वर्गको जानता है। उसने दृष्टि उठाकर देखातक नहीं कि उसे चेतावनी किसने दी। उसका गाम्भीर्य, उसकी शान्ति, उसकी स्थिरता क्या कृत्रिम है कि उनके भङ्ग होनेका भय हो ?

'अप्सराका कार्य ही विघ्न करना है।' अमितौजाको चेतावनी केवल विघ्नका प्रयत्न जान पड़ी थी। लोक-स्रष्टाने उसे मन्दराचलपर ही जानेकी आज्ञा दी थी। अब इस अद्‌भुत गिरिपर पहुँचकर उसे स्वयंका ही पता नहीं तो उसके द्वारा क्या हो रहा है, इसको वह कैसे समझ सकता है।

× × ×

जब मर्यादा-पुरुषोत्तमके आत्मज कुशने अपनी राजधानी अयोध्या बनायी, उस समय उसका जन्म हुआ था। ब्राह्मणका पुत्र बचपनसे ही शान्त और गम्भीर हो, उचित ही था। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही उपनयन-संस्कार करके माता-पिताने गुरुकुल भेज दिया उसे। अपनी सेवासे श्रीवशिष्ठनन्दन महर्षि शक्तिको संतुष्ट किया उसने।

महाराज कुशको यज्ञ करना था। गुरुदेव शक्ति यज्ञिय ऋत्विक् कलापग्रामसे ले आना चाहते थे। स्वयं अपनी

योगशक्तिसे तो वे उस दिव्य क्षेत्रमें गये ही, साथमें बालक अमितौजाको भी लेते गये; क्योंकि उसका आग्रह गुरुदेवके साथ युगजीवी उन महापुरुषोंके दर्शन करनेका था।

'इसे तुम यहीं रहने दो!' महायोगी वृद्धश्रुतने आदेश दे दिया अकस्मात्। 'इस बालकमें योगसिद्ध पुरुषोंके लक्षण हैं। संसारी इसे बनना नहीं है।'

महर्षि शक्तिको उन ज्ञान-वय-तपोवृद्धका आदेश स्वीकार करना पड़ा। बालक अमितौजाको बहुत प्रसन्नता हुई कि वह इस अतिमानव क्षेत्रमें निवासका सुयोग प्राप्त कर सका।

आरम्भके केवल तीन दिन महायोगी वृद्धश्रवाके उसे दर्शन हुए। उसकी खोज-खबर इससे अधिक रखनेकी आवश्यकता नहीं थी। कुछ दिव्यौषधियोंका सेवन कराया गया उसे आवक्ष अलकनन्दाके हिम-प्रवाहमें स्थित करके और कुछ सामान्य आदेश दिये गये।

कलापग्राम दिव्यदेही योगियोंकी भूमि है। स्थूल-वाग्-व्यवहार वहाँ चलता नहीं। अमिताजाको जब आवश्यकता हुई, उसे सदा ऐसा लगा कि कोई उसके भीतर ही बैठा उसे समझाता है, उसे आदेश देता है, उसे सम्हालता है। अध्ययन और साधन साथ-साथ चलते रहे; किंतु दैहिक दृष्टिसे अपनी गुफामें वह एकाकी ही था। कालका उसके लिए महत्त्व नहीं रह गया था। क्षुधा-पिपासा, आलस्य-तन्द्रा-निद्रा, रोग-शोकका प्रवेश उस दिव्य क्षेत्रमें

नहीं है। देह जहाँ क्षण-क्षण क्षीण होता है, आयुको लेकर ही काल-गणना वहाँ होती है। कलापग्राममें तो काल जैसे स्थिर हो गया है।

'आत्मतत्त्वकी अपरोक्षानुभूति क्या है?' अन्तःकरण निर्मल हुआ, विक्षेप-विरहित हुआ और श्रुति-शास्त्रका सम्यक् अध्ययन हुआ तो जिज्ञासाको जाग्रत् ही होना था। आश्चर्य यह था कि जैसे अन्य सभी प्रश्नोंके उत्तर उसे अपने भीतर मिल जाते थे, जैसे वहाँ अलक्ष्य रहनेवाले महापुरुष संकल्पकी भाषामें अबतक उसके अध्ययन एवं साधनका संचालन करते आ रहे थे, वैसे इस जिज्ञासाका उत्तर उसे नहीं मिला। किसीने उसे उत्तर देनेकी अनुकम्पा नहीं की।

'आत्मा प्रतिशरीर भिन्न है तो कोई सर्वव्यापक सत्य सम्भव कैसे है?' वह चिन्तन करके किसी निश्चय-पर पहुँच नहीं पा रहा था। 'आत्मा विभु है, श्रुति कहती तो यही है, किंतु इस तथ्यका अपरोक्ष क्यों नहीं होता?'

लगता था कि उसे यहाँके महापुरुषोंने एकाकी छोड़ दिया है। कलाप-ग्राममें किसीका भी दैहिक अन्वेषण व्यर्थ है, यह वह जानता था। जबतक वे योगसिद्धवपु स्वयं दर्शन देना न चाहें, उनका दर्शन पाया नहीं जा सकता। उसने मानसिक रूपसे आर्त पुकार की; किंतु लगता था कि उसका संकल्प उनमें-से किसीतक पहुँच नहीं रहा था। सब-के-सब महापुरुष साथ ही समाधिमें स्थित

हो गये हों, यह भी असम्भव नहीं था।

'तब श्रुतिके परमोपदेष्टा ही मेरा मार्ग-दर्शन करेंगे।' उसने सीधे ब्रह्माजीके दर्शन करनेकी इच्छा की। दीर्घकालीन साधनाने उसे समर्थ बना दिया था। ब्रह्मलोक पहुँचना उसके लिए कोई समस्या नहीं थी।

'मुझसे क्या त्रुटि हुई कि मेरा प्रश्न अनुत्तारित रह गया है?' उसने भगवान् ब्रह्मासे पूछा—'किस अपराधके कारण महात्माओंने मेरा त्याग किया है?'

'कोई त्रुटि—कोई अपराध नहीं।' पितामहने सस्नेह उसकी ओर देखा। 'प्रत्येक साधकका एक अधिकार होता है। साधनके कुल हैं। जो जिस कुलका है, उस कुलका परमाचार्य ही उसका पथ-प्रदर्शक है। तुम कलाप-ग्रामके योगनिष्ठ कुलके नहीं हो। तुम्हारे परिमार्जन—परिशोधनतककी सहायता ही वहाँसे उपलब्ध हो सकती थी।'

'आप सृष्टिके परमगुरु हैं। समस्त कुलोंके आप कुलपति हैं।' अमितौजाने स्रष्टाकी स्तुति करके प्रार्थना की। 'इस अज्ञ शरणागतपर आप अनुग्रह करें।'

लोकपितामह बहुत व्यस्त रहते हैं। स्रष्टाका कर्म सहज नहीं है। अनन्त-अनन्त जीव, उन जीवोंके पृथक्-पृथक् कर्म-संस्कार और फिर उनका परस्पर सम्बन्ध बड़ा जटिल है। किसीको जिसका पुत्र बनाना है, उसके कर्म किसी औरसे उलझे हैं। जीवको देह देनेमें भी सृष्टिकर्ता पूरे सावधान रहते हैं। जड यन्त्रका निर्माण सदा एक-सदृश होता है; किंतु स्रष्टा तो चेतन हैं। दो प्राणी—

दो मनुष्य सृष्टिके आदिसे अन्ततक एक आकृतिके उन्हें नहीं बनाने हैं। दो व्यक्तियोंके अँगूठेकी रेखाएँतक एक-जैसी नहीं। इस व्यस्ततामें उपदेश देनेका अवकाश कहाँसे निकालें वे? उन्होंने अमितौजाको मन्दराचलपर श्री-हनुमान्जीके समीप जानेको कह दिया।

× × ×

'भद्र तुम?' जहाँ कालकी कला नहीं चलती, वहाँ समय कितना बीता व्यर्थ प्रश्न है। श्रीहनुमानजी स्वयं सावधान न होते, उनकी तन्मयता इतनी प्रबल थी कि अमितौजाको बाह्यसंज्ञा आती नहीं थी।

'सृष्टिकर्ताने मुझे श्रीचरणोंमें भेजा।' पद-वन्दनके अनन्तर परिचय देकर अमितौजाने कहा। 'धन्य हो गया यह जन।'

'अनन्तका स्वभाव ही है कि वह स्वयंको भी सम्पूण रूपमें देख नहीं सकता और चेतन होनेसे प्रकाशित करना भी उसका स्वभाव है।' श्रीरामदूतने समझाया। 'जब अपनेको ही अपूर्ण रूपमें वह प्रकाशित करता है, 'अहं-इदं' की भ्रान्ति अवकाश पा जाती है। 'इदं'के रूपमें प्रतीयमान समस्त प्रपञ्च 'अहं'से अभिन्न है।'

आवरण हो तो निवृत्त हो। अपरोक्षानुभव शब्दसे जिसका संकेत किया जाता है, वह स्थिति अर्थात् अविद्या-निवृत्ति तो तभी हो गयी थी, जब वह इस आश्रमकी सीमामें आया था। दो क्षण मौन बना रहा—जैसे उस शब्दातीत स्थितिमें पुनः तन्मय हो गया हो।

'यह निर्गुणबोध बहुत कुछ बुद्धिगम्य है।' अमितौजाने अब नवीन जिज्ञासा प्रकट की। 'किंतु स्वयं सृष्टिकर्ता जिन्हें ज्ञानियोंके मुकुटमणि कहते हैं, उनका यह भक्ति-तन्मयभाव बुद्धिगम्य नहीं हो रहा है।'

'भद्र! तुम स्वयं प्रमाण हो इस सम्बन्धमें।' श्रीराम-दूतने कोई व्याख्या नहीं की।

'अपरोक्षानुभव शब्दातीत स्थिति है।' अमितौजा गम्भीर हो रहा था। 'किंतु आपके सान्निध्यमें आकर जिस उच्छलित आनन्दका—जिस तन्मयताका अनुभव हुआ, वह अपूर्व है, अचिन्त्य है। इसकी किसी कलाकी भी तुलना नहीं। यह क्या है प्रभु? कैसे प्राप्त हो यह अवस्था?'

'यही भक्ति है, भद्र!' गद्गद स्वर हुआ वायुनन्दन-का। 'भक्ति की नहीं जाती। जो की जाती है, वह तो साधना है। भक्तिके लिए और साधना भी क्या? भक्ति साधन-साध्या नहीं है। वह स्वयं फलरूपा है। वे करुणा-वरुणालय श्रीराघवेन्द्र प्रदान करें तो उनके चरणोंमें भक्ति होती है। भक्तिकी साधना—कुछ तो करना ही है मनुष्य-को; अतः उनके नाम, रूप, लीला, अर्चा-विग्रहादिका सेवन करता है वह। उसका यह प्रयास—शिशुका प्रयास उसके अनुसार ही तो होगा। वे तो अनन्त कृपासिन्धु हैं। भक्ति तो उनका प्रसाद है।

'यह सगुण तत्त्व—सगुण परमेश्वरमें ही भक्ति सम्भव है; किंतु' अमितौजा कहते हुए भी स्वयं संकुचित

हो रहा था। 'विचार करनेपर सगुणकी उपलब्धि बहुत कठिन लगती है।'

'तुम संकोच कर रहे हो, वत्स!' स्नेहसे हनुमान्‌जीने समझाया। 'बुद्धिके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें सगुणकी उपलब्धि नहीं होती, यह तुम्हारा मन्तव्य उचित है। निर्गुण बोधगम्य है, अतः उसमें बुद्धिका प्रवेश है। सगुण बोधगम्य नहीं है, श्रद्धैकगम्य है और श्रुति-शास्त्र उसमें प्रमाण हैं। सगुण-निर्गुण—उभय अभिन्नरूप एक अद्वितीय सच्चिदानन्द परमतत्त्व है। सत्‌के रूपमें उसकी उपलब्धिका अर्थ है अपरोक्षानुभव—ज्ञानमें अवस्थिति; किंतु आनन्दके रूपमें उपलब्धि तो श्रद्धाके माध्यमसे ही सम्भव है।'

'आनन्द ही तो प्राणिमात्रका परमप्राप्तव्य है।' अचानक अमितौजा चौंका। उसे अर्थ, धर्म और काम कभी पुरुषार्थ जान नहीं पड़े थे। पुरुषका अर्थ—प्राप्तव्य धन नहीं हो सकता। धन धर्मके लिए या भोगके लिए। भोग विषयी, पामर, पशुओंका—अज्ञानियोंका प्राप्तव्य होता है। भोगका फल दुःख है। दुःख किसीका प्राप्तव्य नहीं है। धर्मका फल धन या भोग—व्यर्थ बात। धर्मका फल अन्तःकरणकी शुद्धि और इस शुद्धिका फल आत्मज्ञान-मोक्ष। मोक्ष ही एकमात्र मनुष्यका पुरुषार्थ है—प्राप्तव्य है, अबतक वह यही मानता आया है। लेकिन मोक्ष—परमशान्ति ही क्या जीव चाहता है? जीव तो चाहता है आनन्द—उच्छलित, अभङ्ग, अखण्ड आनन्द।

'पुरुषार्थ—पुरुषके श्रमसे—साधनसे जो प्राप्त हो सके, वह परमाभीष्ट मोक्ष ही है।' श्रीहनुमान्‌जीने उसके प्रश्नकी अपेक्षा नहीं की। अतः लौकिक दृष्टिसे शास्त्र चार ही पुरुषार्थ कहता है। अपने व्यक्तित्वको उन कृपामयके चरणोंपर उत्सर्ग करके उनके प्रसादरूपसे प्राप्त होनेवाली भक्ति पुरुषके प्रयत्नसे साध्य नहीं है। इतना होनेपर भी परमाभीष्ट होनेसे भक्ति पञ्चम एवं परम पुरुषार्थ है।'

भगवान्‌की पूजा

एक साधारण कृषक है रामदास। जब शुक्र तारा क्षितिजपर ऊपर उठता है, वह अपने बैलोंको खली-भूसा देने उठ पड़ता है। हल यदि सूर्य निकलनेसे पहले खेतपर न पहुँच जाय तो किसान खेती कर चुका। दोपहर ढल जानेपर वह खेतसे घर लौट पाता है। बीचमें थोड़े-से भुने जौ या चने और एक लोटा गुड़का शर्बत—यही उसका जलपान है। जाड़ेके दिन सबसे अच्छे होते हैं। उन दिनों जलपानमें हरी मटर उबालकर नमक डालकर घरसे आ जाती है खेतपर और गन्नेका ताजा रस आ जाता है।

दोपहरमें थोड़ा-सा विश्राम मिलता है कृषकको। भोजन करके वह आध घड़ी ही तो बैठ या लेट पाता है। उसे खेत गोड़ने हैं, मेड़ ठीक करनी है, बैलोंके लिए चारा काटना है। ये कार्य चलते रहते हैं रात्रितक। वह रात्रिको भी निश्चिन्त कहाँ सो पाता है। रात्रिमें पशुओं-का, घरका, खेतका, खलिहानका—पता नहीं किन-किन चीजोंका उसे ध्यान रखना पड़ता है। कई बार उसे घरका, खेतका रातमें चक्कर काटना पड़ता है।

कसानकी चिन्ता, किसानका परिश्रम, किसानकी निरन्तर सावधानी नगरमें रहकर नहीं समझी जा सकती। लेकिन रामदास तो साधारण किसानसे भी अधिक व्यस्त रहता है। पहले भी भूखे, गरीब लोग यदा-कदा दूसरोंके खेतसे दो-चार मुट्ठी अन्न चोरीसे काट लेते थे। पहले भी चारा न रहनेपर लोग रातमें

अपने पशु दूसरोंका खेत चरने छोड़ देते थे। लेकिन यह जो पिछली लड़ाई बीती है—पता नहीं क्या हो गया है इस लड़ाईसे। मनुष्य मनुष्य रहा ही नहीं, वह तो जैसे धनके लिए रात-दिन हाय-हाय करनेवाला प्रेत हो गया है। न धर्मका विचार, न दीन-दुखीका ध्यान, न उचित-अनुचितकी चिन्ता। अब तो अच्छे-अच्छे पेटभरे लोग भी दूसरोंका खेत रातको कटवा लेते हैं। दूसरोंके पशुओं-को रातमें लोग खोल ले जाते हैं और पता नहीं कितनी दूर बेच डालते हैं। चोरी, डाका, हत्या—गाँवके सीधे लोगोंमें भी यह सब नित्यकी बात हो गयी। आज किसीका खेत पूरे-का-पूरा कट गया चोरीसे, आज किसीके घर डाका पड़ा, आज किसीके पशु खोल लिये गये। बेचारे किसान रात-रातभर जागकर खेतोंका चक्कर काटते हैं। गाँवभरके पशु एक स्थानपर बाँधे जाते हैं और वहाँ बारी-बारीसे गाँवके लोग जागते हैं। घरोंमें सदा यही चिन्ता रहती है—'पता नहीं कब क्या हो जाय।'

रामदास बहुत सीधा है। उसका सीधा स्वभाव उसके लिए और कठिनाईका कारण है। सीधेका मुँह कुत्ता भी चाट जाता है। लोग दिनमें ही रामदासके खेतसे अन्न काट लेते हैं। उसके खेतमें लोग अपने पशु हाँक देते हैं। वह किसीको उलाहना देता है तो उलटे उसे डाँटा जाता है। लोग झगड़ा करनेको उतारू हो जाते हैं। रामदास क्या करे, वह मन मारकर रह जाता है। किस-किससे

वह झगड़ा करे। कहाँ-कहाँकी वह रात-दिन सम्हाल करे। जहाँसे दो क्षणको हटता है, वहीं लोग घात लगाये बैठे रहते हैं।

रामदासके घरमें पत्नी है, दो बच्चे हैं। भरपेट रूखा-सूखा भोजन किसानको मिलता जाय तो वह अपनेको बड़ा भाग्यवान् मानता है। वैसे कोई घूमते-फिरते बाबाजी रामदासके यहाँ आ जायँ तो उनको वहाँसे भूखे नहीं जाना पड़ता। गाँवके लोग कोई गाँवमें भूला-भटका साधु या भिखारी आवे तो उसे रामदासका घर बता देते हैं और रामदास है कि चाहे उसके घरमें उपवास ही हो रहा हो, आनेवालेको तो वह कहीं-न-कहींसे भोजन करायेगा ही। आये दिन उसके यहाँ कोई-न-कोई टिका ही रहता है।

गाँवके लोग समझते हैं, रामदास ऊपरसे ही फटे हाल रहता है। उसके खपरैलके घरमें कहीं-न-कहीं अवश्य बड़ी रकम गड़ी होगी। अनेक बार लोग उसपर व्यंग करते हैं इस बातको लेकर। वह कुछ भी कहे कौन विश्वास करेगा कि जो इस मँहगीके दिनोंमें इस प्रकार साधु-भिखारी टिकाये रहता है, उसके घरमें कोई बड़ी पूँजी नहीं होगी।

पत्नी झल्लाती है, बच्चे अनेक बार रोते हैं अच्छे पदार्थोंके लिए। उन्हें अच्छे वस्त्र भी नहीं मिल पाते। घरमें किसी प्रकार गायका कुछ घी एकत्र भी हो जाय तो वह बच्चोंके कण्ठके नीचे कहाँ पहुँच पाता है। वह

तो कोई साधु खा जायँगे। वैसे घी निकलनेकी नौबत ही कम आती है। दूध या दही घरमें हो और अतिथिको न दिया जाय, यह रामदासके घर तो होनेसे रहा। रामदास तो 'पित्तमरू' है। बाहरके लोग, गाँवके लोग उसके खेत काट लें, चरा लें, उसे चार बात कह लें तो और घरमें पत्नी झकझक कर ले, रो ले तो— रामदासको जैसे कुछ सुनायी ही नहीं पड़ता। वह तो ऐसा बना रहता है, जैसे कोई दीवारको डाँटता या उलाहना देता हो। पत्नी बेचारी जब बहुत दुखी होती है, तभी कुछ कहती है। वह भी जानती है कि उसके कुछ कहनेका कोई अर्थ ही नहीं है।

'दाने-दानेपर मुहर लगी है। जो जिसका है, वह उसे ले जाता है। मेरा और तेरा हाय-हाय करना क्या काम आयेगा?' रामदास कभी-कभी पत्नीको समझाता है। बड़े विचित्र हैं उसके तर्क। वह कहता है कि उसे एक सच्चे संत मिले थे। वह तब बहुत छोटा था। संतने कहा था—'सब भगवान्-ही-भगवान् हैं। तू जो कुछ करता है, उससे भगवान्की ही पूजा होती है।' रामदास ठहरा देहाती खड्डूस। उसने उस महात्माकी बात गाँठ बाँध ली। वह कहता है—'चाहे सामने लें, चाहे चोरीसे लें। चाहे अतिथि बनकर खायँ, चाहे डाकू बनकर ले जायँ, लेते तो भगवान् ही हैं। मेरी खेती तो भगवान्की पूजाके लिए है।'

यह हल जोतना, खाद फेंकना, खेत गोड़ना, घास

काटना भगवान्की पूजा है, यह बात रामदासकी स्त्री नहीं समझ सकती। रामदास भी इसे कुछ ठिकानेसे नहीं समझता। वह इतना ही जानता है कि संतने कहा है—'तू जो करता है, सब भगवान्की पूजा है।'

'मैं तुम्हारी पूजा कहाँ रोकती हूँ।' स्त्री समझती है कि उसका पति जो थोड़ी-सी रामायणकी पोथी पढ़ लेता है, दो-चार भजन बोल लेता है, शंकरजीकी पिण्डीपर एक लोटा जल डालकर कनैरके दो फूल चढ़ा देता है, पूजा तो यही है। इस पूजामें स्त्रीको भला क्या आपत्ति हो सकती है। 'तुम डाँटते क्यों नहीं चरवाहोंको। कल कल्लू कह रहा था कि मोहनकी भैंसें अपना आधा खेत चर गयीं।'

कभी भैंसें, कभी गायें, कभी बैल, कभी बकरियाँ खेत तो अब आदमीतक 'चर-चोंथ' जाते हैं। रामदासकी पत्नी अपने पतिपर इसीलिए झल्लाती है—क्यों उसका पति दूसरोंकी भाँति अपने खेतकी रक्षा नहीं करता।

'मैं भगवान्से नहीं झगड़ूँगा।' रामदास कदाचित् ही कभी बोलता है। वह तो सिर झुकाकर सुन लेना ही जानता है।

'भगवान्, भगवान्, भगवान् ··· ।' उसकी पत्नी कभी-कभी डर जाती है—उसका पति पागल तो नहीं होने लगा है ?

× × ×

(२)

वे एक साधु हैं। बहुत दिन हो गये उस बातको जब उन्होंने घर छोड़ा था। बड़ा सच्चा वैराग्य था उनका। उनके भाग्यने उनका साथ दिया, उन्हें किसी ऐसे-वसेके चक्करमें नहीं पड़ना पड़ा। एक अच्छे संतने उनपर कृपा की।

बाबा रामदासजी—अब यही उनका नाम है। घरपर भजन करनेकी कोई सुविधा नहीं थी। वे पूजा करने बैठते थे तो कमरेके बाहर बड़े भाईके बच्चे परस्पर लड़ते-झगड़ते या खेल-कूदमें हँसते-चिल्लाते थे। कभी भाई कोई ऐसा काम बता देते थे जो उन्हें पसंद नहीं था और कभी कोई परिचित मित्र या सम्बन्धी कोई आग्रह करने लगते थे। उनको इच्छानुसार सात्त्विक भोजनतक नहीं मिलता था। क्रोध करके, थाली पटककर, उपवास करके वे हार थके थे; किंतु उनकी भाभीकी समझमें यह बात नहीं आयी कि तनिक-सा मसाला सागमें डाल दिया तो हो क्या गया।

कोई उनकी बात नहीं सुनता था। छोटे बच्चेतक उनकी हंसी उड़ाते थे। कोई वस्तु ठीक समयपर, ठीक तरहसे उन्हें नहीं दी जाती थी। भला इतनी प्रतिकूलतामें कहीं भजन हो सकता है। वे भजन करना चाहते थे। इस मनुष्य जीवनको व्यर्थ खो देना तो बड़ी भारी हानि है। घरपर भजन हो नहीं सकता, यह उन्होंने निश्चित समझ लिया। एक दिन चुपचाप घरसे निकल पड़े और साधु हो गये।

भजनके लिए एकान्त चाहिये। आश्रमोंमें तो वहाँ-के अध्यक्ष मजदूरसे भी अधिक सेवा कराना चाहते है। वनमें न फल हैं, न कंद, और वृक्षोंके नीचे रह भी लिया जाय तो पाँच दिनमें ही दर्शन करनेवालोंकी भीड़ लगने लगती है। संसारके लोगोंका तो स्वभाव है कि वे जिससे प्रेम करते हैं, उसे नष्ट कर देते हैं। जिस कामपर श्रद्धा करते हैं, उस कामके करनेका अवकाश करनेवाले-को नहीं देना चाहते।

पत्तियाँ, बेर, कड़वे-कसले कंद—भला इनसे कोई के दिन पेट भरेगा ? क्षेत्रोंकी रोटियाँ मिल सकती हैं; किंतु बहुत कदन्न होता है वह। पेटमें दर्द, ज्वर, कब्ज—अनेक रोग हैं भोजन-सम्बन्धी संयम न रखनेके साथ। जब शरीर ही स्वस्थ नहीं रहेगा तो भजन कहाँसे होगा। भिक्षा, मधुकरी—लेकिन अब लोगोंमें श्रद्धा रही नहीं। साधुको एक टुकड़ा भी बहुत-से लोग देना नहीं चाहते। बहुत अपमान सहना पड़ता है, बहुत भटकना पड़ता है, पेटकी चिन्तामें ही बहुत-सा समय नष्ट हो जाता है।

यह सब पुरानी बातें हैं। बाबा रामदासजी अब वृद्ध हो चले हैं। वृद्धावस्थामें शरीरको कुछ सुविधा चाहिये ही। एक पक्की कुटिया भक्तोंने बनवा दी है। एक कुआँ है। सामान रखने और सत्सङ्गके लिए दो कमरे और बन जायँ तो पूरी सुविधा हो जाय। भक्तलोग आते हैं, कहा भी जाता है। धीरे-धीरे यह भी हो जायगा। ये पासके खेतवाले, ये सरकारी कर्मचारी—आज युग ही बड़ा अद्भुत है। ये सब एक साधको भी तंग करते रहते

हैं। कोई-न-कोई झगड़ा इनका खड़ा ही रहता है। क्या हुआ यदि आश्रमकी गायने मुँह कहीं मार लिया। साधुकी ही गाय है न। दर्शन करने आनेवालोंके बच्चे—भला बच्चोंको कैसे रोका जाय। वे खेतसे चने या मटरके चार दाने तोड़ ही लेते हैं तो इसमें ये लोग इतना लाल-पीले क्यों होते हैं। ये सरकारी कर्मचारी साधुसे भी भूमि-कर चाहने लगे हैं। इनकी सेवा-सत्कार न की जाय तो······।

दो फूसकी झोपड़ियाँ पड़ गयी हैं। आगे-पीछे उन्हें पक्की करा देना है। ये साधक न रहें तो आश्रमकी स्वच्छता, भंडारा, गो-सेवा आदिकी व्यवस्था कैसे हो ? यह सब तो करना ही पड़ता है। इतनी सब सुविधा न हो तो भजन कैसे हो। इसमें दोष क्या है कि भोजन और आवास (घर) की ओरसे निश्चिन्त होकर मनुष्य भजनमें लग जाय। लेकिन भजन –भजन तो होता ही है। बाबा रामदासजीकी यह प्रशंसा करनी होगी कि वे बड़े भजन-निष्ठ संत हैं। उनके हाथमें सुमिरनी घूमती ही रहती है। उनका जप प्रायः चलता रहता है। एकान्तमें भी नियम-पूर्वक वे डेढ़-दो घंटे बैठते हैं। उस समय वे क्या करते हैं; यह तो कोई बतानेकी बात नहीं है। जप, ध्यान, पाठ, ठाकुर-सेवा—साधु एकान्तमें भजन करने बैठेगा तो और क्या करेगा।

कुटियाके बनवानेका प्रयत्न, पड़ोसके खेतवालोंका झगड़ा, सरकारी कर्मचारियोंका स्वागत-सत्कार, आश्रम-में रहनेवाले साधक-सेवकोंकी सम्हाल, उनको यदा-कदा

भूलोंके लिये डाँटना-डपटना—यह सब तो आवश्यक कर्तव्य हैं। इनको न किया जाय तो आश्रम रहे कैसे। आश्रमकी सारी सामग्रीकी पूरी खोज-खबर बड़ी सावधानीसे रखनी पड़ती है। ये साधक-सेवक बड़े उड़ाऊ और निश्चिन्त होते हैं। जिधरसे दृष्टि हटी, उधर ही कुछ-न-कुछ गड़बड़ अवश्य हो रहेगी।

सत्सङ्गकी बात तो कहनी ही नहीं चाहिये। साधु जो कोई चर्चा करे, वही तो सत्सङ्ग है। वैसे दर्शनार्थी भक्त आते हैं, उनका सुख-दुःख सुनना पड़ता है। उनकी रुचिका ध्यान रखकर उनकी बातें सुनना और उनसे बोलना पड़ता है। उन्हें आशीर्वाद देना पड़ता है, अनुष्ठान या उपासना बतलानी पड़ती है। भगवच्चर्चा भी बीच-बीचमें होती ही है। इन आगत लोगोंमें बहुत-से प्रतिष्ठित, सम्पन्न, सम्मानित, अधिकारी लोग भी होते हैं। अपने यहाँ आनेवालेका स्वागत-सत्कार तो करना ही चाहिये। जो जिस श्रेणीका होता है, उसका सम्मान भी उसी प्रकार किया जाता है। यह सब सत्सङ्गका अङ्ग ही तो है।

बाबा रामदासजी बहुत व्यस्त रहते हैं। वे बहुत सवेरे उठ जाते हैं। रातको भी देरतक भक्तलोग उनके पास बैठे रहते हैं। दोपहरीमें केवल दो घन्टे वे बड़ी कठिनाईसे विश्राम कर पाते हैं। कभी-कभी तो उस समय भी कोई सत्सङ्गी भक्त आ जाते हैं। भक्तोंके आनेका तो कोई समय नहीं है, वे आते ही रहते हैं। आश्रमके सभी कामोंकी खोज-खबर रखना और भक्तों-

को सत्सङ्गसे सतुष्ट करना क्या थोड़ी उलझनका काम है।

एक बात है—बाबा रामदासजी सीधे हैं। उनमें किसीके नाम-यशसे डाह नहीं है। बड़ा भारी मठ बनाने या शिष्योंकी संख्या बढ़ानेका लोभ नहीं है। बहुत अधिक धन आता रहे, यह भी लालसा उनमें नहीं। उन्होंने अपनी किसी सिद्धिका भी कभी वर्णन नहीं किया। वे बड़ी सरलतासे कभी-कभी कहते हैं, 'मेरा जीवन व्यर्थ ही गया। रघुनाथजीके चरणोंमें मेरी भक्ति हुई नहीं। भजन बनता नहीं मुझसे।'

लोग कहते हैं—'बाबा रामदासजी बड़े अच्छे साधु है। वे बहुत अधिक भजन करते हैं।'

× × ×

(३)

बाबा रामदासजीके आश्रमपर उनके गुरुदेव पधारे हैं। बड़ी भारी जटा, लंबा-तगड़ा गोरा शरीर। कोई नहीं जानता कि वे कितने वर्षके हुए। उनके सारे शरीरके रोम श्वेत हो गये हैं। पूरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। उनका न कहीं मठ है, न मढ़िया। रमतेराम संत हैं। घूमते-घामते आज बाबा रामदासजीकी कुटियापर आ गये, इधर-उधर देखा और बोले—' रामदास! तू तो अब बड़ा साधु हो गया है। तेरा आश्रम तो अच्छा बन गया है।'

' मैंने ये ईंट-पत्थर ही बटोरे हैं। मेरा हृदय तो अब

भी वैसा ही अशान्त है। मैं क्या सचमुच कभी साधु बन सकूँगा ? मुझसे क्या सचमुच कभी भगवान्‌की आराधना होगी ?' बाबा रामदासजी गुरुदेवके चरणोंमें मस्तक रखकर फूट-फूटकर रोने लगे।

'तू जप तो करता है। पाठ भी करता है, ध्यान भी…।' गुरुदेव पता नहीं और क्या-क्या कहने वाले थे।

बाबा रामदासजी बीचमें ही बोले—'सब करके भी नहीं किये जैसा है। मेरे मनमें अब भी वैसा ही क्रोध, लोभ आदि भरा है। श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मेरी प्रीति नहीं हुई सो नहीं ही हुई।'

'तू रघुनाथजीकी प्रीति कहाँ चाहता था। तुझे भजन करना कहा था। तू तो सुविधा चाहता था। असुविधाओंसे ऊबकर घरसे भागा था। सुविधा चाहिये थी तुझे सो मिल गयी।' गुरुदेव सहज भावसे बोलते गये। 'रामनाम तो कल्पवृक्ष है। नामका जप और भगवान्‌का भजन व्यर्थ नहीं जाता। लेकिन तू सुविधा चाहता था न ?'

बाबा रामदासजीसे बोला नहीं गया। उनके नेत्र फटे-फटे-से हो रहे। एकटक गुरुदेवके मुखकी ओर देखते रह गये वे। गुरुदेव जैसे उनकी ओर देखते ही नहीं थे। वे कहते जा रहे थे—'तुझे तो घरमें असुविधा थी, साधु होनेपर असुविधा थी। जब तुझे रघुनाथजीके व्यवहारसे ही असुविधा हो तो रघुनाथजी मिलें कैसे ?'

'रघुनाथजीके व्यवहारसे असुविधा ?' बाबा राम-दासजी चौंके।

'क्यों ? तू चौंकता क्यों है ? सब कहीं रघुनाथजी नहीं हैं क्या ? प्राणियोंकी सब चेष्टायें उनकी ही सत्ता और प्रेरणासे नहीं होतीं क्या ?' अबकी गुरुदेवने डाँट दिया।

'लेकिन घरमें तो सेवा-पूजा, भजन हो ही नहीं पाता था।' बाबा रामदासजीको बहुत पुरानी बात स्मरण हुई।

'तू क्या जानता है कि माला घुमाना ही पूजा है ? यह जप और पूजा तो पूजा है; किंतु इससे भी बड़ी पूजा है एक। सारे जीवनको ही रघुनाथजीकी पूजा बना देना। जबतक पूजाके कुछ घण्टे हैं रघुनाथजीके लिये और जीवनके अधिकांश घंटे हैं अपने लिये, तबतक जीवन अपने लिए है। वह रघुनाथजीके लिए है ही नहीं तो उसमें रघुनाथजीका प्रेम आवे कहाँसे।' गुरुदेवके नेत्रोंमें वात्सल्य आ गया था।

'सारा जीवन पूजा बन जाय—कौन-सी विधि है वह ?' बाबा रामदासजीने घुटनोंके बल बैठकर दोनों हाथ जोड़ लिए।

'कोई विशेष विधि नहीं। तू देखेगा उस विधिको ?' बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये वे महापुरुष चल खड़े हुए।

× × ×

(४)

'रामदासका घर है न इस गाँवमें ?' महात्माने एक ग्रामीणसे पूछा। बाबा रामदासजी चौंके; किंतु उनके

चौंकनेका कोई कारण नहीं था। यह उनकी जन्मभूमि नहीं है। यह तो दूसरे ही किसी रामदासकी बात हो रही है।

'महाराज ! वह पागल हो गया है। उसके बच्चे भूखों मर जायँगे। उसकी स्त्री रो-रोकर पछाड़ खा रही है। आप उसपर दया कीजिये। यह सब हत्या हमलोगोंको लगेगी।' ग्रामीण संतके चरणोंपर गिर पड़ा।

'वह पागल तो पहलेसे है।' संत हँसे—'किंतु तुमलोगोंको हत्या क्यों लगेगी ?'

'महाराज ! पाप तो हमने ही किया है।' ग्रामीणके नेत्रोंसे झर-झर आँसू झरने लगे। इस साल ओले पड़े थे, खेतोंमें बहुत कम अन्न हुआ। उसका खलिहान मेरे पास ही था। जब उसके अन्नकी राशि तैयार हुई, मेरे मनमें पाप आ गया। मेरे पास भी अन्न बहुत थोड़ा हुआ था। उसकी आँख बचाकर उसका सब-का-सब अन्न मैंने अपनी ढेरमें डाल दिया। वह मुझसे झगड़ सकता था, उसके मुँह खोलते ही सारा गाँव मुझे धिक्कारता ; किंतु वह तो एक शब्द कहना जानता ही नहीं।'

'क्या हो गया इससे, तुम उसका अन्न उसे लौटा दो !' संतने उसी सरलभावसे कह दिया।

'महाराज ! मैं दो मन अपना भी दे दूँगा ; किंतु आप उसे ठीक कर दीजिये। वह पागल हो गया है। उछल रहा है, कूद रहा है और बार-बार पृथ्वीमें लोट रह है। वह ठीक नहीं होगा तो उसके बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। दूसरा कोई उसके घरमें करने-धरनेवाला नहीं।' ग्रामीणने साधुके पैर पकड़ लिये।

'तुम डरो मत ! वह ठीक हो जायगा । जो श्रीरघुनाथके लिए पागल होता है, उसके बाल-बच्चोंका पालन अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजको करना पड़ता है।' साधुकी पूरी बात ग्रामीणकी समझमें भले न आवे, उसे आश्वासन मिल गया।

साधु जब रामदासके घर गये, वह सचमुच नाच रहा था, कूद रहा था, पृथ्वीमें लोट-पोट हो रहा था। हँस रहा था वह बार-बार। उसे एक ही धुन थी— 'रामने गेहूँ खाये ! रामने गेहूँ खाये मेरे।'

'लेकिन अब तुम श्रीरामको फिर गेहूँ नहीं खिलाओगे क्या ? खेती ही नहीं करोगे तो श्रीरामको गेहूँ खिलाओगे कैसे ? भला कहीं हँसने और नाचनेसे खेती होती है।' साधु हँसते-हंसते बोले।

'श्रीराम ! गुरुदेव !' एक क्षणमें उसका उन्माद दूर हो गया। वह संतके चरणोंमें लेटा पड़ा था—मैं खेती करूँगा गुरुदेव ! खेती ही तो मेरी पूजा है।'

संतने मुख पीछे घुमाकर बाबा रामदासजीकी ओर देखा और गीताकी भगवद्वाणी उनके मुखसे उद्घोषित हुई—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः ।।

(१८।४६)

दाताकी जय हो !

कुएँ पर रक्खा पत्थर पानी खींचनेकी रस्सीसे बराबर रगड़ता रहता है और उसपर लकीरें पड़ जाती हैं; इसी प्रकार कोई एक ही शब्द बराबर रटा करे तो उसकी जीभपर या मस्तिष्कपर कोई विशेष लकीर पड़ती है या नहीं, यह बताना तो शरीरशास्त्रके विद्वान्का काम है। मैं तो इतना जानता हूँ कि जहाँ वह नित्य बैठा करता था, वहाँका पत्थर कुछ चिकना हो गया है। श्रीबाँकेबिहारीजीके मन्दिरके बाहर कोनेवाली सँकरी सीढ़ीके ऊपर वह बैठता था और एक ही रट थी उसकी—'दाताकी जय हो!'

मैं अनेक बार दर्शन खुलनेसे पर्याप्त पूर्व पहुँचा हूँ। वैसे भी श्रीबाँकेबिहारीजी बड़े मनमौजी ठाकुर हैं। कभी उठेंगे तो साढ़े नौ बजे ही उठ जायँगे और नहीं तो बारह बजेतक भी दर्शनार्थी गर्भगृहके फाटककी ओर टकटकी लगाये रहेंगे। अनेक बार मुझे एक घंटेसे भी अधिक दर्शनकी प्रतीक्षामें बैठना पड़ता है। इतनेपर भी कभी ऐसा नहीं हुआ कि मैंने उसे उस सीढ़ीके ऊपरी भागपर अनुपस्थित पाया हो। वह कब वहाँ आकर बैठता था और कब वहाँसे उठता था, यह मुझे पता नहीं। इतना महत्त्वपूर्ण वह नहीं था कि कोई भी उसके आने या चले जानेपर ध्यान दे। मुझे आशा नहीं कि सीढ़ीके पास या सामनेकी दिशामें जो तनिक हटकर दूकान है, उसके दूकानदार भी उस भिखारीके वहाँ बैठने तथा वहाँसे

जानेका समय बता सकें।

जैसे दीमकोंने किसी मिट्टीके ढेलेको चारों ओरसे खा लिया हो या चूहोंने किसी फलको ऊपर-ऊपरसे कुतर लिया हो, भगवती रासभवाहिनीने उसके मुखको ऐसी आकृति दे दी थी। शीतलादेवीने उसकी आकृति ही नहीं बिगाड़ी थी, उसके नेत्र भी हर लिये थे। उसके नेत्रोंमें-से एक तो बाहर निकल-सा आया था और दूसरा धँसकर लाल रंगका पतला गड्ढामात्र रह गया था। उन नेत्रोंकी ओर देखना किसीके लिए भी अरुचिकर था और इसीलिए यदि मैं उसकी पूरी हुलिया ठीक-ठीक न बता पाऊं तो मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे क्षमा कर देंगे; क्योंकि आप समझ ही सकते हैं कि वह कोई दर्शनीय पुरुष नहीं था। मैंने तो जितना एक दृष्टिमें देखा जा सकता है, अनिच्छापूर्वक उसे देखा है और क्योंकि ऐसा बार-बार करना पड़ा है, इससे मुझे इतना और पता लग गया है कि उसपर लकवेने भी कभी कृपा की थी। उसका एक हाथ और एक पैर लगभग तभीसे पेंशन पाने योग्य हो गये। वह घसिटता हुआ ही चल पाता था।

मन्दिरके मुख्यद्वारके सामनेकी सीढ़ी पर्याप्त चौड़ी है; किंतु भिखारी बैठना चाहते हैं और बैटते हैं कोनेवाली सीढ़ीके पास। वह सीढ़ी बाजारकी ओरसे आनेवालोंको पहले मिलती है, अतः लोग उसीसे ऊपर चढ़ते हैं और उसीसे उतरते भी हैं। सँकरी है वह सीढ़ी और भीड़ भी उसपर अधिक रहती है। उसके ऊपरी भागमें दोनों ओर कठिनतासे दो-दो मनुष्य दब-सिकुड़कर बैठ सकते

हैं। दो वृद्धा बंगाली भिखारिनें बैठती हैं, एक कोई और भिक्षुक तथा एक वह अन्धा बैठा करता था।

मैले फटे चिथड़े थे उसके शरीरपर और जो बायाँ हाथ काम कर सकता था, उसमें अल्मोनियमकी एक पिचकी मैली कटोरी रहती थी। अपनी कटोरी वह प्राय: आगे बढ़ाये रहता था और जैसे जप करता हो, एक ही रट लगाये रहता था—'दाताकी जय हो!'

बाबू लोग और बाबा लोग दोनों ही उस गंदे भिखारी-को छू जानेके भयसे वहाँ पहुँचकर झिझक उठते थे और उनके एक ओर हटनेके प्रयत्नमें वहाँ दूसरे यात्रियों-को धक्का लगना एक सहज क्रिया हो गयी थी। चटक-मटक करती, चप्पलें चटकाती महिलाएँ उसे देखकर मुख फेर लेतीं। उनकी नाकसे अकारण ही रुमाल जा टकराता था। कभी कोई श्रद्धालु बाबू या कोई वृद्धा उसकी कटोरीमें एक पैसा या कोई फल अथवा किसी अन्नके कुछ दाने डाल भी देते थे और तब उसके कण्ठमें उत्साह आ जाता था। वह अधिक उच्चध्वनिसे कहता था—'दाताकी जय हो!'

लोग उससे घृणा करते थे, उसे देखकर दूर हटते थे, नाक-भौं सिकोड़ते थे; किंतु उसे इससे क्या? सभी बातोंमें कुछ-न-कुछ अच्छाई होती है। उसके अन्धे होनेमें भी यह अच्छाई थी कि वह लोगोंके इस घृणाभाव एवं तिरस्कारको देख नहीं पाता था। नेत्रोंकी शक्तिने स्वयं नष्ट होकर उसे इस अपमानसे असम्पृक्त बना दिया था। वह तो एक समान सभी पदध्वनियोंको

समझता था। उसके लिये तो बालक और बूढ़े, स्त्री और पुरुष, उजले और मैले, सुन्दर और कुरूप, सब एक-जैसे थे। वह तो सभी पदध्वनियोंका स्वागत करता और कहता—'दाताकी जय हो!'

(२)

'वह कौन है?' आज जब वह अन्धा भिखारी अपने स्थानपर बैठा दिखायी नहीं पड़ा, तब नित्यकी अभ्यस्त आँखें वहीं रुक गयीं। उसके बैठनेका स्थान कुछ सूना-सूना लगा, कुछ ऐसा जो अनुभव होता है; किंतु कहा नहीं जा सकता। पैर स्वतः वहाँ रुक गये और तब जिज्ञासा हुई—'वह आज यहाँ क्यों नहीं है?'

यात्री सीढ़ीसे धड़ाधड़ ऊपर जा रहे थे या नीचे उतर रहे थे, दूकानदार ग्राहकोंको सामान दे रहे थे और थोड़ी दूरीपर चबूतरेपर बँधी बछिया पागुर करती हुई आने-जानेवालोंको अधखुले नेत्रोंसे यदाकदा देख लेती थी। किसीको स्मरण नहीं आया कि एक मनुष्य आज अनुपस्थित है। किसीका ध्यान अन्धे भिखारीके रिक्त स्थानकी ओर नहीं गया। किसीको ध्यान देनेका अवकाश नहीं था और वह स्थान अब रिक्त भी कहाँ था। वहाँ एक दूसरा अन्धा भिखारी अभी-अभी आकर बैठ गया है। यह उससे तगड़ा है। इसके नेत्र और मुख उतने कुरूप नहीं। इसके दोनों हाथ और दोनों पैर स्वस्थ हैं। यह 'दाताकी जय' नहीं मनाता। यह कहता है—'भैया, भैया, देते जाओ। अन्धेको कुछ देते जाओ। राधेश्याम!'

हाँ, तो उसका स्थान रिक्त नहीं रहा। उस भिखारीका स्थान भी रिक्त नहीं रहा। विश्वमें किसीका स्थान रिक्त नहीं रहता। चाहे कोई कितना भी बड़ा हो, उसके न रहनेपर विश्वका कोई काम दो क्षणके लिये भी अटकता नहीं। वह तो भिखमंगा था। उसकी ओर कौन ध्यान देता; लेकिन जो प्रख्यात हैं, जिनके बहुत अधिक स्वजन-बान्धव हैं, उन्हींकी ओर कौन ध्यान देता है। कौन किसके लिये अपनेको व्यस्त करता है? वैसे तो नन्हे बच्चेका खिलौना टूट जाता है तो वह भी रोता है। इसी प्रकार जिनके स्वार्थको धक्का लगता है, वे रो-पीट लेते हैं। वह अन्धा था, अपाहिज था। उससे किसीका स्वार्थ नहीं था। वह जीता हो तो और मर गया हो तो, अब उसकी खोज-खबर कौन ले? किसलिये?

'वह अन्धा कहाँ गया?' कुतूहलवश पास बैठी बुढ़ियासे पूछ लिया।

'पता नहीं क्या हुआ?' बुढ़ियाको भी आश्चर्य था और खेद भी था। उसने कहा—'बाबू! बहुत सीधा था वह। मुझसे कभी झगड़ता नहीं था। दैवने उसे भिखारी बना दिया, नहीं तो, बड़े आदमीका लड़का था वह।'

'बड़े आदमीका लड़का?' कुतूहल और सहानुभूति जगी। सच तो यह है कि हमारे मनमें मनुष्यके प्रति सहानुभूति नहीं रही है। हमारी मानवता मर गयी है। बड़प्पनके प्रति, धनके लिए हमारी जो लिप्सा है, वही

कभी नम्रता, कभी भय, कभी आतंक, कभी सहानुभूति और कभी अन्य कोई रूपमें व्यक्त होती हैं।

उस अन्धेने अपने समीप बैठनेवाली इस वृद्धा भिखारिणीसे अपना पिछला जीवन-परिचय बताया था। स्वाभाविक था कि समाजसे उपेक्षित दो भिखारियोंमें परस्पर सहानुभूति हो और वे एक-दूसरेसे अपनी बीती बतावें। बुढ़िया कोई इतिहास-अन्वेषक नहीं थी और न अन्धेने ही उसे एक ही दिनमें क्रमबद्ध जीवनचरित सुनाया होगा। यह भी सम्भव है कि अन्धेने कुछ बातें छोड़ दी हों और कुछ सर्वथा गढ़कर सुनायी हों। अपनेको गौरवशाली सिद्ध करनेका प्रलोभन जिन्हें झूठ बोलनेके लिए फुसला न पाये, कम-से-कम वह अन्धा ऐसे महत्तम लोगोंमें था या नहीं, यह कौन जानता है। लेकिन मेरे पास अब सच-झूठका विवेचन करनेका कोई साधन नहीं है। अन्धेके गत जीवनकी बातोंमें बहुत-सी झूठी हों, तो भी आप निश्चिन्त रह सकते हैं। उससे आपकी, समाजकी या इतिहासकी कोई हानि नहीं होगी; क्योंकि वह बेचारा अन्धा और चाहे जो रहा हो, पर ऐतिहासिक पुरुष तो एकदम नहीं था।

'बुढ़ियाने मुझे जो बताया, उसका तात्पर्य यह था कि वह कहीं पूरबका (जापान, सिंगापुर या रंगूनका नहीं और कलकत्तेका भी नहीं। पूरबका अर्थ बलिया, छपरा या बिहारका) रहनेवाला था। उसके पिता अच्छे जमींदार थे। गङ्गा-किनारे पक्का बड़ा-सा मकान था। घरपर हाथी, घोड़े, गाय, बैल सभी थे। अपने पिताका

वह अकेला लड़का था। माता जन्मके कुछ दिन पीछे ही भगवान्के घर चली गयी। पिताने उसे पाला-पोसा। उसका बड़ा दुलार—बड़ा सत्कार था। बड़े होनेपर वह स्कूल जाने लगा और उसे घरपर भी पढ़ानेके लिए मास्टर आने लगे। चौथी कक्षामें परीक्षा दे चुकनेके पश्चात् उसपर शीतला देवीकी कृपा हुई। इस रोगने उसके नेत्र ले लिये। घरपर मुकद्दमेमें पिताके लगनेके कारण जमींदारी बिक गयी। बिहारके प्रसिद्ध भूकम्पमें उसकी कोठी गिर पड़ी और पिताजीकी उसीमें समाधि हो गयी। इस शोकके समय ही उसे लकवेका धक्का लगा। भूकम्पमें जो स्वयंसेवक सेवाकार्य करने आये थे, उन लोगोंकी सेवा तथा चिकित्सासे प्राण बच गये। कई महीनेमें वह घिसटकर चलने योग्य हुआ। जन्मभूमिमें रहना अब उसके लिये कठिन हो गया। अपना कोई सगा-सम्बन्धी था नहीं। कोई रहा भी हो तो ऐसी दशामें क्या संसारके सम्बन्धी कभी सहायक होते हैं ? किसी प्रकार माँगते-खाते वह चल पड़ा। रेलमें बाबुओंके तिरस्कार और गालीकी उपेक्षा किये बिना काम कैसे चलता ? अन्ततः वह श्रीवृन्दाबन-धाम पहुँच गया।

बुढ़ियाने उसके घरका ऐश्वर्य बहुत बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया। उसने कभी उसकी माता या पिताकी प्रशंसा की और कभी उसके अज्ञात सगे-सम्बन्धियोंको तथा रेलके टिकटबाबुओंको कोसा। उसकी सब बातें यहाँ लिखना किसी कामका नहीं है। उसे आज एक साफ-सुथरे वस्त्रवाला श्रोता मिला था। वह उमंगमें आ गयी

थी और इस उमंगने ही अन्धे भिखारीके प्रति उसकी सहानुभूति और बढ़ा दी। उसकी कथाको विराम देनेके लिये मैंने पूछा—'वह गया कहाँ ?'

'बाबू ! मुझे क्या पता कि वह कहाँ गया ?' वह कुछ खिन्न होकर बोली—'आज पहली बार वह यहाँ नहीं आया है।'

'रहता कहाँ है वह ?' मैं जानता था कि कहीं सड़कके किनारे या किसी खँडहरमें उसका डेरा होगा।

'कालीदहके पास जो टूटी बुर्जी है···!' बुढ़ियाने एक पता बताया आसपासके सब चिह्नोंका वर्णन करके। उसे आश्चर्य हो रहा कि एक बाबू क्यों इस प्रकार एक भिखारीके सम्बन्धमें उत्सुक हो रहा है। मैंने उसके सामने एक दुअन्नी फेंक दी और उस भिखारीका पता लगाने मुड़ पड़ा। पता नहीं क्यों मेरे मनमें उसके लिये पूरा कुतूहल जाग पड़ा था।

(३)

'बाबूजी ! बुढ़िया भिखारिनने मुझे पुकारा। मैं कठिनाईसे दस पद गया होऊँगा।

'क्यों ?' लौटकर मैंने उससे पूछा।

'कल वह अन्धा शामको मन्दिरमें चला गया था।' बुढ़ियाको कभी कदाचित् ही किसी एक व्यक्तिने दो आने पैसे दिये होंगे। उसे आज दुअन्नी मिली थी, अतः उसे जो कुछ पता था, वह सब बता देना चाहती थी।

'अच्छा ही हुआ। उसने भगवानको प्रणाम कर

लिया !' मुझे बुढ़ियाने ही बताया था कि वह अन्धा जाति-से ऊँचा था। कदाचित् ब्राह्मण था वह। इसलिए मन्दिरमें उसके चले जानेकी बात मुझे खटक नहीं सकती थी।

'प्रणाम कहाँ किया उसने। वह तो वहाँ भी 'दाताकी जय !' कहकर कटोरी आगे करके भगवान्से भीख माँग रहा था। मन्दिरके दाढ़ीवाले अधिकारीने उसे डाँट दिया और लोगोंने ठेल-ठालकर निकाल दिया मन्दिरसे बाहर।' बुढ़ियाका स्वर कह रहा था कि ऐसा होना ही स्वाभाविक हुआ। भला कहीं कोई ठाकुरजीसे भीख माँगता है।

'सभी तो माँगने ही जाते हैं। एक अन्धा भिखारी भी माँगने गया उस सर्वेश्वरके समीप तो कौन-भूल की उसने ? लेकिन दूसरे मुस्टण्डे भिखारियोंसे यह देखा नहीं गया। उन्होंने उस दीनको दीनबन्धुके यहाँसे भी धक्का देकर निकाल दिया !' मैंने ये बातें अपने मनमें कहीं ; क्योंकि वह वृद्धा इनको समझेगी, ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

'वह जो पत्थर है न, उस पर संन्यासी बाबा कल शामको दर्शन खुलनेसे कुछ पहले आ बैठे थे। उनके साथ कई बाबू लोग थे। वे महात्माजी जोर-जोरसे बातें कर रहे थे।' मन्दिरसे बाहर चबूतरेपर कई पत्थरके चौड़े तख्ते-से बने हैं। उन पटियोंपर दर्शनार्थी थोड़ा-बहुत विश्राम कर लेते हैं, आगे-पीछे छूटे साथियों की प्रतीक्षा कर लेते हैं या दर्शन खुलनेमें कुछ देर हो तो दो-दो चार-चार बैठकर कुछ चर्चा भी करते हैं। बुढ़ियाने

इनमेंसे उस ग्रन्तिम पत्थरकी ग्रोर संकेत किया जो इस सीढ़ीसे सबसे समीप है।

'वे महात्माजी कह रहे थे कि भगवान् बड़े दयालु हैं। श्रीबाँकेबिहारीजीसे बड़ा दानी सारे संसारमें ग्रौर कोई नहीं। लोग झूठे ही दूसरोंके ग्रागे हाथ फैलाते हैं। बाँकेबिहारीके ग्रागे हाथ फैलाकर फिर ग्रौर किसीके ग्रागे नहीं फैलाना पड़ता। बुढ़िया कहती गयी—" बाबू ! साधु, संत तो ऐसी ज्ञानकी बातें कहते ही हैं। कोई ऐसी बात सुनकर कहीं भगवान्से भीख माँगने थोड़े ही जाता है ? लेकिन वह तो घसिटता हुग्रा मन्दिरमें चला ही गया। मैं उसे मना करती उसके पीछे-पीछे गयी। उसने जाते ही कटोरी बढ़ा दी ग्रौर चिल्लाकर बोला—'दाताकी जय !' मैं बचाकर निकाल न लाती तो लोग पीट-पीटकर उसको भरता बना देते। बाहर ग्राकर वह बैठा नहीं, सीधे घसिटता हुग्रा चला गया यहाँसे। बाबू ! कहीं भिखारीका रूठना ग्रौर शान दिखाना चल सकता है ?'

बुढ़ियाकी धारणा थी कि वह ग्रन्धा शानमें ग्राकर चला गया है ग्रौर इसीलिए ग्राज नहीं ग्राया है। यह बात वह पहले कहना नहीं चाहती थी। मेरे लिये ग्रब वहाँ ठहरना कठिन हो गया था। मैं तो उस मानधनीको देखनेके लिए उत्सुक हो उठा था।

(४)

ग्राप क्या सोचते हैं—मुझे वह ग्रन्धा भिखारी मिल गया ? हाँ, मिल तो गया; किन्तु न ग्रन्धा मिला ग्रौर न

न भिखारी ही मिला। यदि बुढ़ियाके बताये खँडहरमें अपने चिथड़ोंमें लिपटा वह तब तक पड़ा न होता तो मैं उसे पहचान सकता— ऐसा सम्भव नहीं था। वही चिथड़े, वही कटोरी, वही दीमकोंसे खाये ढेले-जैसा मुख; किंतु वह अन्धा नहीं था। उसकी दोनों आँखें भली चंगी थीं। उसके दोनों हाथ और दोनों पैर स्वस्थ थे, यह मैं पीछे देख सका लेकिन यह मैंने पहुँचते ही देख लिया कि जैसे वह अन्धा नहीं है, वैसे ही वह भिखारी भी नहीं है। उसके मुखपर न दीनता है न याचना है। उसपर तो ऐसी मस्ती है, ऐसा तेज है, ऐसी सम्पन्नता है; जैसे सारा विश्व भिक्षुक है और एकमात्र दाता वह स्वयं है।

'बाबा!' कोई भी होता मेरे स्थानपर तो उसे इसी प्रकार पुकारता। आज उसकी उपेक्षा या तिरस्कार करना शक्य नहीं था। मैंने पन्द्रह-बीस मिनट चुपचाप बिताये देखनेमें और तब पुकारा उसे।

'बाबा!' मेरा शब्द खण्डहरमें प्रतिध्वनित हुआ और वह चौंका। उसने मेरी ओर देखा और खुलकर हँस पड़ा। बड़ी देरतक हँसता रहा वह। 'तू आ गया? इतनी जल्दी आ गया तू? जा, मैं नाराज नहीं हूँ। क्या हुआ जो उन लोगोंने मुझे धक्के देकर निकाल दिया। तू इतनी दूर क्यों आया? भूखा होगा तू। थक गये होंगे तेरे चरण। जा, वहाँ भोग लग रहा होगा। अरे हाँ, जब तू ही मेरा है तो लेना-देना क्या? बार-बार क्षमा माँगने क्यों आता है? चल, मैं ही चलता हूँ तेरे साथ।' सम्भवतः वह पागल हो गया था। उसके नेत्र मेरी ओर थे, बस, इतना ही सच है; नहीं तो, वह

न तो मुझे देख रहा था और न मुझसे बातें कर रहा था। वह किससे बातें कर रहा था ? पागल किससे बातें करते हैं, यह क्या कभी कोई जान सका है ?

वह पागल था ? ना, वह पागल नहीं था। लेकिन अब यह बात कहनेसे लाभ क्या ? जब यह बात समझमें आयी, वह जा चुका था। वह बात करते-करते सहसा उठ खड़ा हुआ। मेरी अपेक्षा किये बिना मेरे बगलसे खँडहरसे निकला। पासके कुएँमें उसने अपनी कटोरीमेंसे कुछ उठाकर फेंक दिया। क्या फेंक दिया ? पीली-पीली चमकीली कोई वस्तु। सम्भवत: एक अशर्फी ? अशर्फी ! हाँ; क्योंकि उसकी कटोरीमें मैंने एक झलक पहले पा ली थी। कहाँ मिली उसे यह ? सहसा स्मरण हुआ कि कल सायंकाल वह श्रीबाँकेबिहारीके सामने कटोरी करके कह आया था—'दाताकी जय !' तब उन दीनबन्धुने उसे क्या छूछा लौटा दिया होगा ?

वह किससे बातें कर रहा था ? अब क्या यह भी बतानेकी बात है ? क्या कोई और भी ऐसा है जो अपने याचकको स्वयं अपने-आपको दे डाले और इतनेपर भी संकुचित ही होता रहे ? लेकिन अब वह बात करनेवाला यहाँ नहीं है और जिससे वह बातें कर रहा था, उसे तो उसके-जैसे भाग्यशालीके नेत्र ही देख पाते हैं। मैं उस कुएँके पास खड़ा रह गया कुछ क्षण ठक्से और इतनेमें वह दौड़ता-भागता किधर चला गया कुछ पता नहीं। बहुत ढूँढ़ा, बहुत देखा इधर-उधर; किंतु क्या इस प्रकार कभी ऐसे लोग मिला करते हैं।

× × ×

देशमें कितने मन्दिर हैं, कैसे गिना जाय और यह भी कैसे बताया जाय कि उनके सामने सीढ़ियोंपर या सड़कोंपर कितने भिखारी बैठते हैं तथा 'दाताकी जय' मनाया करते हैं। वे चाहे जो शब्द बोलें, तात्पर्य एक ही है। उन भिखारियोंकी ही चर्चा क्यों, कोठियोंमें रहनेवाले, मोटरोंमें घूमनेवाले बाबूजी, सेठजी, लाला-जी, कलक्टरसाहेब, मिनिस्टरसाहेब आदि कहलानेवाले भी तो भिखारी ही हैं। कोई हाथ फैलाकर पेट दिखाकर माँगता है, कोई मुख बनाकर, भौंहें मटकाकर माँगता है। सब माँगते हैं, सब चाहते हैं, सबके मुख न सही प्राण तो कहते ही हैं—'दाताकी जय हो!'

'मन्दिरोंमें आराध्यपीठपर वही महादानी विराजमान है। ये भिखारी क्यों सीढ़ियोंपर ही दिन-रात बैठे रहते हैं? ये क्यों भिखारियों के सामने हाथ फैलाते-फैलाते थक जाते हैं? क्यों ये मन्दिरमें नहीं जाते? क्यों ये उस सच्चे दाताके आगे ही हाथ फैलाकर नहीं कहते— 'दाताकी जय हो।'

कौन समझावे इन्हें? जो समझाने योग्य था, जो अनुभवी था, वह तो पता नहीं कहाँ चला गया। मैं नित्य श्रीबाँकेबिहारीजी जाता हूँ; पर वह तो फिर आया ही नहीं। वह जहाँ बैठकर भीख माँगता था, वह स्थान तो भर गया; किंतु जहाँ उसने सच्चे दातासे माँगा था, वह रिक्त है। कोई भरेगा उसे?

आस्तिक

(१)

'भगवान् भी दुर्बलोंकी पुकार नहीं सुनते !' नेत्रोंसे झर-झर आँसू गिर रहे थे। हिचकियाँ बँध गयी थीं। वह साधुके चरणोंपर मस्तक रखकर फूट-फूटकर रो रहा था।

'भगवान् सुनते तो हैं; लेकिन हम उन्हें पुकारते कहाँ हैं।' साधुने स्नेहभरे स्वरमें कहा। विपत्तिमें भी भगवान्‌को हम स्मरण नहीं कर पाते, पुकार नहीं पाते—कितना पतन है हमारे हृदयका।'

'लेकिन प्रभु ! वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् दयामय कहे जाते हैं।' उसकी वाणीमें अपार वेदना थी। 'मेरे घरके तो सभी नित्य प्रातः-सायं पूजा करते थे।'

'लेकिन भाई ! किसी मूर्तिपर दो बूँद जल डाल देना, दो फूल चढ़ा देना, दो-चार पद्य या श्लोक मुखसे बोल देना ही तो पूजा नहीं है। पूजा तो तब होती है, जब हम भगवान्‌को सचमुच मानें।' साधु महाराजके स्वरमें कोमलताके साथ उलाहना था।

'तो क्या मैं भगवान्‌को मानता नहीं ?' उसने मस्तक उठाया।

'भगवान् सर्वव्यापक हैं, सर्वसमर्थ हैं, यह हम सब जानते-मानते हैं।' साधुने उसी शान्तिसे कहा—'लेकिन हम झूठ बोलते हैं, दूसरोंको धोखा देते हैं और अनेक पाप करते हैं। संकटमें घबरा जाते हैं—इतने घबरा जाते

है कि भगवान्‌को पुकारनेका हमें स्मरणतक नहीं रहता।'

'संकट भी संकट जैसा हो तब !' अपने नेत्र पोंछने-जैसी भी उसमें शक्ति नहीं थी। गला रुँधनेसे अटक-अटककर वह बोल पा रहा था—'महाप्रलय एक साथ ही सिरपर टूट पड़े तो किसका चित्त ठिकाने रहे ? कोई उस समय क्या करता है, यह क्या सोच-समझकर किया जा पाता है ?'

'कोई क्या मानता है, क्या जानता है, किसपर विश्वास करता है, इसका उसी महासंकटमें तो पता लगता है।' साधुने स्थिर गम्भीर स्वरमें कहा—'एक नन्हें बच्चेको जब वह माँसे दूर हो, डराकर देखो। वह जानता है माँ दूर है, आ नहीं सकती, उसकी सहायता नहीं कर सकती ; किंतु वह भागेगा पीछे, कंकड़-पत्थर तुम्हें मारनेकी सुध उसे पीछे आयेगी, वह पहले पुकारेगा—'माँ ! माँ !!' और हम तो जानते हैं कि सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमारे पास है। हमें वह आधे क्षणके करोड़वें भागमें बचा सकता है। यदि हम हृदयसे परमात्माको मानें, हम आस्तिक हों तो उसे विपत्तिमें पुकारना भूल जायँ, क्या यह बन सकता है।'

उसने मस्तक झुका दिया। उसका शरीर जैसे ऐंठकर शिथिल हो गया हो। उसकी वाणी खिन्न, हीन, निराश, अन्तिम श्वास लेते प्राणोंकी वाणी-जैसी थी—'परमात्मा!'

'जब तुम्हारे पीछे तुम्हारे महाराज खड़े हों—भले तुमने उन्हें देखा न हो पर जान गये हो कि वे तुम्हारे पीछे

दबे पैर चुपचाप चले आ रहे हैं—कोई तुम्हें एक सहस्र स्वर्णमुहरें दे तो तुम उसके लोभमें पड़कर उस समय कोई भेद बता सकोगे ? तुम कोई भी बुराई कर सकोगे उस समय ? कोई कर्तव्य तुम्हारे सामने हो तो उसमें तुमसे ढिलाई होगी ? तुम्हारा कोई शत्रु तलवार लेकर तुम्हारे सामने आ खड़ा हो तो तुम जानते हो कि तुम क्या करोगे उस समय ?' साधुने बड़ी गम्भीरतासे प्रश्न किये।

'मेरे उदार महाराज !' उसने एक बार मस्तक झुकाया। या तो शोकके वेगमें साधुकी पूरी बात उसने सुनी नहीं या उनका उत्तर देना उसे उचित नहीं जान पड़ा। वह केवल अन्तिम प्रश्नके उत्तरमें बोला—'मेरे महाराज मुझसे कुछ दूर भी हों—इतनी दूर कि मैं उन्हें पुकार सकूँ, मुझे किसका भय। मुझे आवश्यकता क्या कि मैं अपनी तलवारकी मूठपर हाथ रखूँ। कोई कैसा भी चिढ़ आवे, मैं पीछे मुख घुमाकर देख लूँ तो उसकी नानी मर जायगी।'

'निखिल ब्रह्माण्डनायक उदार-चक्रचूड़ामणि परमात्मा तुम्हारे साथ है और फिर भी तुम्हें भय लगता है, घबराहट होती है, इसका तो यही अर्थ है न कि परमात्मा है और सर्वत्र है, इस बातका हृदयमें पूरा निश्चय नहीं !' साधु कहते जा रहे थे—'आस्तिक पाप नहीं कर सकता, कर्तव्यमें प्रमाद नहीं कर सकता और भयभीत नहीं हो सकता। आस्तिकताकी कसौटी ही है निष्पाप, कर्तव्यनिष्ठ एवं निर्भय होना। आस्तिककी पूजा ही यथार्थ पूजा होती है।'

'महाराज ! मैं आस्तिक नहीं हूँ ! मुझमें ऐसा विश्वास कभी नहीं रहा है।' वह बोल नहीं रहा था—उसके प्राण चीत्कार कर रहे थे—'परमात्मा !'

(२)

वह राजपूत है। दूसरे राजपूतोंके समान ही वह भी है ; किंतु दूसरोंके बहुत-से दोष उसमें नहीं हैं। वह यहाँके ठिकानेदारका अङ्गरक्षक है। उनका विश्वासी सेवक है। अपने ठिकानेदारको वह 'महाराज' कहता है, उसके तो महाराज ही हैं। बहुत स्नेह है उसपर उनका।

राजस्थानके राजपूतोंमें कुछ दोष भी हैं। दोष किसमें नहीं हैं। वह अपनेको निर्दोष कहाँ कहता है, किंतु आप उससे शपथ ले सकते हैं कि उसने कभी मांस या मदिरा छुआ हो। एक और दोष—यह शेष भी राजाओं, ठिकानेदारोंमें जहाँ-तहाँ मिलता ही था और उनके पार्श्वचर लोगोंका उसमें सम्मिलित हुए बिना निर्वाह नहीं था। उसके सामने भी बात आयी थी—केवल एक बार बात और उसने बिना सोच-संकोचके तलवार खींच ली थी—'दूसरोंकी बहिन-बेटी तो मेरी बहिन-बेटी हैं !' उसका उस दिनका वह रौद्र रूप—किसको मरना था जो उससे फिर कोई ऐसी-वैसी बात कहता।

कुलपरम्परासे उसे ठिकानेदारजीकी सेवा मिली है, शूरता मिली है और आस-पासके राजपूतोंसे सर्वथा भिन्न आचार मिला है। उसके पिता जब मरण-शय्यापर

थे, उन्होंने कहा था—'बेटा ! भगवान् नारायण हमारे कुलदेवता हैं। मांस और शराब हमारे कुलमें किसीने छुआ नहीं है। यह खड्ग—यह तो माँ भवानीका साक्षात् रूप है। यह तेरे पिता-पितामहके हाथमें रहता आया है। इसकी लज्जा रखना। स्वामीकी रक्षामें प्राण जाते हों तो जायँ, कुलको कलंक मत लगाना !'

उसने पिताकी शय्याके पास बैठकर उस कुलपरम्परासे प्राप्त खड्गको मस्तकसे लगाकर शपथ ली। प्राण-त्यागके अन्तिम क्षणमें उससे पिताने कहा था—'एक बात और स्मरण रखना। नारीकी गौरव-रक्षा—यह राजपूतका परम धर्म। धर्मसे बड़ा कोई नहीं होता बेटा ! प्राण भी नहीं और स्वामी भी नहीं। धर्म तो साक्षात् भगवान् नारायणका स्वरूप है।'

आज आप उसकी व्यथा—उसकी दारुण पीड़ा समझ नहीं सकेंगे। राजपूतके जिस परम धर्मकी रक्षाके लिए नारीके गौरवको उज्ज्वल रखनेके लिए उसने एक दिन अपने उस स्वामीके सम्मुख भी तलवार खींच ली थी, जिनके लिए अपना मस्तक काटकर धर देनेमें भी उसे संकोच नहीं, उसका वही परम धर्म आज नष्ट हो गया है। आज उसके सामने उसका वह परम धर्म······ वह विचार करनेमें भी असमर्थ हो रहा है।

परमात्मा ! परमात्मा !! उसने कभी किसी नारीकी ओर वासनाभरी दृष्टि नहीं उठायी। किसीकी वासना-को 'हूँ' कहकर भी उसने समर्थन नहीं किया। आज उसके घरकी नारी—उसकी बहिन—ये नरपिशाच······

परमात्मा !' वह जैसे उन्मत्त हो गया है। उसे न पृथ्वी दीखती है, न आकाश। सारी दिशाएँ जैसे घूम रही है।

भारतका विभाजन—पता नहीं कितने अनर्थ किये इस विभाजनने। उसका गाँव सीमाका गाँव बना और सीमाके गाँवकी जो दुर्दशा होती है, उसे भी क्या बताना पड़ेगा? दो राष्ट्रोंमें मैत्री हो, सन्धि हो, तब भी सीमाके ग्रामोंपर तो रात-दिन कोई-न-कोई संकट चढ़ा ही रहता है और जहाँ इतना उपद्रव, इतनी कटुता, इतनी आपाधापी हो……।

था वह घरपर ही। किसीका घरपर रहना क्या अर्थ रखता है? बहुत छोटा गाँव है उसका। थोड़ेसे लोग रहते हैं। वे सावधान भी होते तो कुछ होना-जाना नहीं था और उस समय तो सब रात्रिमें अपने-अपने घरोंमें सोये पड़े थे। तड़ातड़ गोलियाँ चलने लगीं, चिल्लाहट सुनायी पड़ने लगी। वह चौंककर उठा तो बड़ी भारी भीड़ने उसका गाँव घेर रक्खा था। कई घर धाँय-धाँय करके जल रहे थे। वह अपनी तलवार लेकर दौड़ पड़ा। कुछ और भी राजपूत दौड़े होंगे; किंतु सीमाकी दूसरी ओरसे जो उपद्रवी चढ़ आये थे, उनकी संख्या बहुत बड़ी थी। राजपूत गिने-चुने थे। कुछ भी हो, जब मरना ही है सब सम्मुख युद्धमें मरनेसे राजपूत पीछे क्यों हटे। वह जैसे आँखें बन्द करके टूट पड़ा था। उसे पता नहीं कि पीछे वहाँ क्या हुआ। वह दूसरे दिन, दिन चढ़े नेत्र खोल सका था। कोई उसे अपने घर उठा लाया था। अनेक स्थान शरीरके जले-से जाते थे।

स्थान-स्थानपर पट्टियाँ बँधी थीं।

उपद्रवी केवल उपद्रवी थे। लूट-पाट और हत्या ही उनका उद्देश्य था। वे शीघ्र ही भाग गये थे। कुछ उनके लोग और कुछ गाँवके लोग खेत रहे थे। कुछ पशु, सम्पत्ति लुटेरे ले गये थे और कुछ मनुष्य भी। कुछ झोपड़ियाँ और मकान भस्म हो गये थे।

'अपना घर जल चुका है। बहुत थोड़ी सामग्री बची है।' उसकी स्त्री उसके सिरहाने बैठी थी और भरे नेत्रोंसे उसीकी ओर देख रही थी।

'गङ्गा कहाँ है?' पत्नीकी बातका उत्तर दिये बिना उसने पूछा। गङ्गा—उसकी विधवा युवती बहिन, गङ्गाके समान ही पवित्र बहिन गङ्गा उसे क्यों नहीं दीखती।

'वह तो मिली नहीं।' पत्नीने सिर झुका लिया।

'मिली नहीं? कहाँ गयी वह?' वह झटकेसे उठ बैठा। एक क्षणमें सब बातें उसकी समझमें आ गयीं। पत्नीने उसे रोकना चाहा; किंतु पता नहीं कहाँकी शक्ति उसमें आ गयी थी। स्त्रीको एक ओर झटककर वह बाहर आया। बिना किसीकी सहायताके उसने साँडिनी कसी और उड़ चला। आज उसकी ऊँटनीको भी जैसे पंख लग गये थे। अच्छे पशु अपने आरोहीकी आतुरता भाँप लेते हैं।

'महाराज!' उसे और कहाँ जाना था। उसके परम आधार तो उसके महाराज ही थे।

'तुम क्या चाहते हो?' ठिकानेदारजीने बड़े ही धैर्यसे, बड़ी शान्तिसे उसकी बातें सुनीं। लेकिन वे कर

हो क्या सकते थे। उनके साथ ही ऐसा कुछ हुआ होता तो भी वे क्या कर सकते थे? एक ठिकानेदारकी शक्ति ही कितनी होती है और यह तो अब दूसरे देशकी बात हो गयी थी।

'मेरी बहिन !' वह तो पागल हो रहा था।

'मैं क्या करूँ? जहाँ इस समय अपने पूरे देशकी शक्ति कुछ नहीं कर पा रही है, वहाँ मैं कर क्या सकता हूँ।' ठिकानेदारजी उसे बहुत मानते थे, बहुत स्नेह करते थे उससे, लेकिन विवश थे।

'हे भगवान! वह धमसे गिर पड़ा भूमिमें। उसका जो आधार था, टूट गया। उसकी आशा नष्ट हो गयी।

'भगवान् !' आशा नष्ट होनेपर मनुष्य कदाचित् ही जीवित रह पाता है। लेकिन मुखमें भगवान्का नाम आया और एक नवीन लहर आयी हृदयमें। एक आशाकी दूसरी ज्योति दिखाई दी।

वह पढ़ा-लिखा कम ही है। उसे तो तलवारकी और राजपूतके आत्मगौरवकी शिक्षा मिली है। वह शिक्षा इस समय काम आवे, ऐसा नहीं है। उसका कुल भगवान् नारायणका उपासक रहा है। वह बचपनसे साधु-संतोंमें श्रद्धा रखता आया है। यहाँसे कुछ दूर एक टेकरी है। टेकरीपर एक कुटिया है। कुटियामें एक संत रहते हैं। संत सिद्ध हैं। सिद्ध संत अपनी इच्छासे ही सब कुछ कर सकते हैं। असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। यही है उसकी आशाका आधार। उसकी ऊँटनी फिर पूरे वेगसे दौड़ने लगी है।

(३)

उसका दुःख, उसकी पीड़ा—मैं उसके शरीरमें बँधी पट्टियोंके नीचेके घावोंकी बात नहीं कहता। उन घावोंमें होती जलनकी बात नहीं कहता और नहीं कहता उस रक्तकी बात जो कपड़ेकी पट्टियोंसे ऊपरतक आ गया दीख रहा है। उसे स्वयं इस पीड़ाका, इन घावोंका इस समय पता नहीं है। पीड़ाका हाहाकार तो हो रहा है उसके हृदयमें। एक राजपूत और उसकी बहिन—गङ्गा-सी पवित्र उसकी बहिन वे क्रूर पशु····· पिशाच······

साधुकी बात वह सुनता रहा। साधुकी बात सुन लेनी चाहिये, यह उसने सुना है। साधुको अप्रसन्न नहीं करना चाहिये, यह वह जानता है। पता नहीं क्यों, इस टेकरीपर पैर रखते ही उसका उन्माद बहुत कुछ दूर हो गया है। उसका हृदय अपने-आप किसी अज्ञात कारणसे आश्वस्त होता जा रहा है। साधुकी बात सुन सके, इतना धैर्य उसमें आ गया है।

'परमात्मा !' उसने साधुकी बात सुनकर बड़ी कातरतासे कहा। वह आस्तिक न सही, साधु महराज भगवान्के परम भक्त हैं। वह उन्हींसे तो दयाकी याचना करने यहाँ आया है।

'भगवान् दयामय हैं। वे किसी आर्त प्राणीकी पुकार कभी अनसुनी नहीं करते। कोई संकटमें उन्हें पुकारे और वे उसकी पुकार न सुनें, यह हो नहीं सकता।' साधुपर उसकी पुकारका प्रभाव पड़ा था। उनके स्वरमें वज्र जैसी दृढ़ता और सम्पूर्ण निश्चय था। उनके नेत्र आकाशमें

कहीं स्थिर हो गये थे।

'परमात्मा !' वह एक बार फिर चीत्कार कर उठा। साधुके आदेशका उसके हृदयपर सीधे प्रभाव पड़ा था।

'भैया !' उसकी पुकार पूरी होते-न-होते दूसरी पुकार आयी। टेकरीपर चढ़ता कोई नारी-स्वर गूँज गया।

'गङ्गा !' वह चौंक पड़ा और दूसरे क्षण ही दौड़ा।

'दयामय प्रभु !' साधुने भूमिपर मस्तक रख दिया और फिर अपने दोनों नेत्र पोंछ लिए।

गङ्गा अकेली नहीं आयी थी। उसके साथ एक और लड़की थी। आजका गङ्गाका स्वरूप देखने ही योग्य था। उसके केश बिखर रहे थे। सारा शरीर रेतसे भरा था। दाहिने हाथमें एक नंगी तलवार थी, जिसे अब भाईको देखते ही उसने झनसे दूर फेंक दिया था। उसके मुखपर, उसके नेत्रोंमें अद्भुत दीप्ति थी। उसने बायें हाथसे उस लड़कीका हाथ पकड़ रखा था और वह लड़की तो जैसे पुतली हो। गङ्गाके हाथके संकेतपर चले चलनेके अतिरिक्त जैसे वह और कुछ करना जानती ही न हो।

'तू यहाँ कैसे आयी बेटी ! यह कौन है ?' जब भाई-बहिन मिल चुके, उनका आवेग घटा, गङ्गाने और दूसरी लड़कीने साधुके चरणोंमें सिर झुकाया और बैठ गयी, तब साधुने पूछा।

'मेरे गाँवपर रातमें लुटेरोंने आक्रमण किया था।'

गङ्गाने मस्तक नीचे किये हुए कहा।

'तुम्हारे भाईने बहुत कुछ बता दिया है।' साधुने बीचमें रोका—'तुम लुटेरोंके हाथसे छूट कैसे आयीं ?'

'मुझे किसने पकड़ा था ? मुझे कौन पकड़ सकता था।' गङ्गाने ऐसे दृढ़ स्वरमें कहा, जिसे सुनकर उसके भाईको भी आश्चर्य हुआ। वह भी अपनी बहिनका मुख देखने लगा।

'तब तुम थीं कहाँ ?' साधुने ही पूछा।

'बाबा ! लुटेरे बहुत बुरे होते हैं। वे किसी स्त्रीके धर्मकी रक्षा करना नहीं चाहते। गङ्गाके लिए यह बहुत बुरी और बहुत अद्भुत बात थी। भला कोई मनुष्य किसी स्त्रीकी मर्यादाका कैसे सम्मान नहीं करेगा। वे लुटेरे इस बेचारीको पकड़े लिये जा रहे थे। इसे बहुत गंदी-गंदी गालियाँ दे रहे थे। यह रो रही थी, गिड़गिड़ा रही थी, प्रार्थना कर रही थी, पर वे सुनते ही नहीं थे।'

'तू इसे बचाने गयी थी ?' साधु इस स्नेहसे पूछ रहे थे, जैसे अपनी सगी पुत्रीसे पूछ रहे हों।

'मैं बचाने नहीं जाती बाबा ? यह मेरी गाँवकी बहिन लगती है। कोई दुःखमें हो तो बचाना नहीं चाहिये बाबा ?' गङ्गाने सहज भावसे कहा—'मैं दौड़ी, मुझे एक कसा खाली घोड़ा मिल गया। एक कोई वहाँ मरा पड़ा था, मैंने उसकी तलवार ले ली। लेकिन बाबा ! लुटेरे बड़े कायर होते हैं। मैं उनके पीछे घोड़ा दौड़ाती गयी। उन्होंने पहले तो गोलियाँ चलायीं;

लेकिन फिर पीछे डर गये। इसे घोड़ेसे उतारकर वे सब भाग गये। मैं इसे घोड़ेपर बैठाकर घर आ रही थी, लेकिन रास्ता भूल गयी। पता नहीं कहाँ भटक गयी। वह घोड़ा भी बड़ा अड़ियल था। बार-बार पीछे ही मुड़कर भागता था। इससे मैंने उसे छोड़ दिया। बहुत भटकती-भटकाती यहाँ आयी हूँ। बहुत थक गयी हूँ बाबा!'

'उतने लुटेरोंके पीछे तू अकेली दौड़ी गयी। तुझे डर नहीं लगा? वे तुझे पकड़ लेते तो क्या करती?' साधुके स्वरमें उलाहना नहीं, स्नेह था।

'क्या मैं मरना नहीं जानती? वे मुझे कैसे पकड़ लेते? भगवान् नहीं हैं क्या बाबा? भगवान् मुझे बचाते न। मैं उन सबसे क्यों डरूँ?' गङ्गाकी वाणीमें अविचल विश्वास था।

'इसका नाम है—अस्तिकता! तुमने आस्तिक देखा?' साधुने गङ्गाके बदले उसके भाईकी ओर देखा।

वह क्या कहे? उसका जी चाहता है कि अपनी इस बहिनके पैरोंपर सिर रख दे। वह गङ्गाका भाई है, यही क्या कम गौरवकी बात है उसके लिये।

भक्ति-मूल----विश्वास

'पानी !' कुल दस गज दूर था पानी उनके यहाँसे ; किंतु दूरी तो शरीरकी शक्ति, पहुँचनेके साधनपर निर्भर है। दस कोस भी दस पद जैसे होते हैं स्वस्थ सबल व्यक्ति-को और आजके युगमें वायुयानके लिये तो दस योजन भी दस पद ही हैं ; किंतु रुग्ण, असमर्थके लिए दस पद भी दस योजन बन जाते हैं—यह तो सबका प्रतिदिनका अनुभव है।

'पानी !' तीव्र ज्वराक्रान्त वह तपस्वी—क्या हुआ जो उससे दस गज दूर ही पर्वतीय जल-स्रोत है। वह तो आज अपने आसनसे उठनेमें भी असमर्थ है। ज्वरकी तीक्ष्णताके कारण उसका कण्ठ सूख गया है। नेत्र जले जाते हैं। वह अत्यन्त व्याकुल हैं।

'पानी ! ओह, पानी देने भी आज रामसिंह नहीं आया ! उसने पड़े-पड़े ही एक ओर देखा। उसका आसनके पास पड़ा तूँबा जलरहित है और अभी तो कहीं किसीके आनेकी आहट नहीं मिलती।

'पानी !' पासकी पहाड़ीपर कुछ घर हैं पर्वतीय लोगों के। उन भोले ग्रामीणोंकी श्रद्धा है इस तपस्वीमें। उनमेंसे एक व्यक्ति रामसिंह तो प्रायः दिनमें दो-तीन बार यहाँ हो जाता है और स्थान स्वच्छ कर जाता है। जल भरकर रख जाता है। कोई और सेवा हुई तो उसे भी कर जाता है। इन महापुरुषकी सेवा करनेका उसे सौभाग्य मिलता है, यही क्या कम है।

रामसिंहके अपने भी तो कार्य हैं। उसके पशु हैं, बाल-बच्चे हैं, कुछ खेत हैं और फिर कल रात उसे भी ज्वर हो गया था। उसे आज आनेमें देर हो रही है, इसमें कोई अद्भुत बात तो नहीं है।

'पानी!' तपस्वीका कण्ठ सूख रहा है। उसकी बेचैनी बढ़ रही है। उसे बहुत तीव्र ज्वर है और ज्वरकी प्यास—'रामसिंह नहीं आया?' दो क्षण पश्चात् ही उसने इधर-उधर नेत्र घुमाये।

'पानी! प्यास! रामसिंह!' लगा तपस्वी मूर्छित हो जायगा। उसका गौरवर्ण मुख ज्वरके कारण लाल हो रहा है। उसके अरुणाभ नेत्र अङ्गार-से जल रहे हैं।

'रामसिंह! तो तू रामसिंहका चिन्तन और उसकी प्रतीक्षा कर रहा है!' पता नहीं क्या हुआ, आप चाहें तो इसे ज्वरकी विक्षिप्तता कह सकते हैं, आपको मैं रोकता नहीं। तू रामसिंहके भरोसे यहाँ आया था। धिक्कार है तुझे, नीलकण्ठ!'

हाँ, तपस्वीका नाम नीलकण्ठ है। यह दूसरी बात कि उसे यहाँ कोई इस नामसे नहीं जानता। सच तो यह कि यहाँ कोई उसका नाम या परिचय जानता ही नहीं। जानने-पूछनेका साहस नहीं हुआ किसीको। किंतु नामकी बात छोड़िये—तपस्वी सम्भवतः ज्वरसे उन्मत्त हो गया है। वह बारंबार इस कठोर भूमिपर मस्तक पटक रहा है। अपने मुखपर तमाचे मारता जा रहा है—'तू अब रामसिंहकी प्रतीक्षा करने लगा है! तुझे अब आशुतोष प्रभुका भरोसा नहीं रहा और तू चला है

उपासना करने ? उपासक बना बैठा है तू इस अरण्यमें।'

नेत्रोंसे अश्रुधारा चल रही है। मुख लाल-लाल हो गया है; किंतु विक्षिप्त हो उठा है वह तो।

× × ×

आज जिसे नीलकण्ठ कहते हैं, स्वर्गाश्रमसे लगभग सात-साढ़े सात मील दूर मणिरत्नकूट पर्वतके चरणोंमें चारों ओर पर्वतमालाओंसे घिरा स्थल तो वही था; किंतु तब उसका कोई नामकरण नहीं हुआ था। बात जो शताब्दियों पूर्वकी है यह।

नीलकण्ठ आज चौदह वर्षसे कुंजी भगतकी निष्ठासे स्वच्छ है। उससे पूर्व आजके लोगोंने ही देखा है कि वहाँ प्रायः वन्यतरुओंके पत्तोंकी राशि सर्वत्र स्वच्छन्द पड़ी रहती थी। बाबा रामझरोखादासजीकी साज-सज्जा कहाँ थी और कहाँ थी तब नैपाली कोठी, धर्मशाला और दूकानें।

तबकी बात, जब ये पाकर-अश्वत्थके युग्मतरु भी नहीं थे। केवल दोनों जलधाराएँ थीं, जो आज भी नीलकण्ठके चरणोंको दो ओरसे धोती एकमें मिलकर आगे बढ़ जाती हैं। तब पाइप लगाकर धाराको नलका रूप देनेकी व्यवस्था नहीं थी। तब तो उनमें पत्तोंकी राशि पड़ी रहती और सड़ा करती थी।

आज भी नीलकण्ठमें यदाकदा रीछ रातमें आ जाते हैं। शेर और चीते वहाँसे सौ-दो-सौ गजतक पर्यटन कर जाते हैं। उस समय तो वन्य पशुओंका आवास था

नीलकण्ठ। केवल दिनमें पर्वत-शिखरोंपर स्थित पर्वतीय जन अपने पशुओंको लेकर वहाँ आते थे।

ऐसे अरण्यमें एक दिन एक लंबे दुबले गौरवर्ण तरुणने, पता नहीं कहाँसे, आकर आसन लगा दिया। वह वहीं आ जमा, जहाँ आज भगवान् नीलकण्ठ विराजमान हैं। उस समय तो वहाँ ठिकानेकी समतल भूमि भी नहीं थी।

बिखरे घुँघराले रूखे केश, प्रलम्ब बाहु, अरुणाभ सुदीर्घ नेत्र—पता नहीं क्या था उस तरुणमें कि वन्य पशुओंने प्रथम दिनसे ही उसे अपना सुहृद् मान लिया। भल्लूकशिशु रात्रिमें कभी-कभी उसके तूँबेका जल लुढ़का दिया करते थे—इससे अधिक उसे किसीने कभी तंग नहीं किया। उसके समीप शेर या चीतेके जोड़े रात्रिमें चाहे जब निःशङ्क आ बैठते थे।

तूँबा और कौपीन—इनके अतिरिक्त उसके पास तो कंद खोदनेके लिए भी कुछ नहीं था। किंतु जो इस प्रकार सर्वात्मापर अपनेको छोड़ देता है, विश्वम्भर उसकी उपेक्षा कर दे तो उसे विश्वम्भर कहेगा कौन? पर्वतीय जन उसके आस-पासका स्थान आकर स्वच्छ कर जाने लगे और उनमें-से कभी किसी और कभी किसीकी गायका दूध तपस्वीकी स्वीकृति पाकर सफल हो जाता था। दूधके अतिरिक्त तपस्वीने कभी कुछ लिया नहीं।

ऋतुएँ आयीं और गयीं। तपस्वी क्या करता है—भला, भजन-साधनको छोड़कर तपस्वी और क्या करेगा? इन बाबाजी लोगोंके अटपटे साधन कहाँ

पर्वतीय जनोंकी समझमें आते हैं। हाँ, प्रारब्धका भोग तो सभीको भोगना पड़ता है। एक वर्षमें जब जल मलिन हुआ, पत्तो सड़े, मच्छरोंका अखण्ड संकीर्तन अन्य वर्षोंसे बहुत बढ़ गया और पिस्सुओंकी संख्या भी पर्याप्त हो गयी, एक दिन तपस्वी रुग्ण हो गया। उसे हड्डी-हड्डी कम्पित कर देनेवाला शीत लगा और ज्वर हो गया।

ज्वर आया और आता रहा। कई दिनसे तपस्वी इतना अशक्त हो गया है कि अपने आसनसे खिसक भी नहीं सकता। पासके पर्वतशिखरपर कुछ घर हैं। उनमें एक घर रामसिंहका है। रामसिंह तपस्वीके लिए जल भर जाता है, स्थान स्वच्छ कर जाता है, कुछ आवश्यक सेवा-कार्य कर जाता है; किंतु रामसिंहके भी बाल-बच्चे हैं, पशु हैं, खेत हैं और कल रात उसे भी ज्वर हो गया। उसे आनेमें देर होना कहाँ कैसे अनुचित या अस्वाभाविक कहा जा सकता है।

× × ×

'आप यह क्या कर रहे हैं प्रभु!' रामसिंह स्वय खिन्न है कि वह देरसे आ सका। वह आज अपनी मैली मोटी चद्दर पूरे शरीरपर लपेटें है।

'रामसिंह!' तपस्वीने देखा उसकी ओर और जैसे उसकी विक्षिप्तता शिथिल हो गयी। उसके अश्रु रुक गये। किंतु उसका प्याससे सूखा कण्ठ भरा-भरा था— 'तुमको भी ज्वर हो गया दीखता है। तुम तत्काल घर लौट जाओ!'

'जल रखकर मैं अभी चला जाता हूँ !' रामसिहने तपस्वीके चरणोंपर मस्तक रखा और फिर तूँबा लेने बढ़ा।

'उसे छूओ मत !' तपस्वीने रोक दिया। 'मुझे जल नहीं चाहिये। दूसरे लोंगोंसे कह देना, आज इधर कोई न आये।'

'जो आज्ञा, प्रभु !' सरल रामसिहने फिर प्रणाम किया। और वह लौट चला। उसने तो साधु-संतोंकी आज्ञा मानना ही सीखा है। उसे बातका सीधा अर्थ ही समझमें आता है। महात्मा लोगोंके चित्तका क्या ठिकाना—वे पता नहीं कब कैसे रहना चाहते हैं। उनकी आज्ञा बिना प्रतिवादके मान लेनी चाहिये, यही जानता है यह रामसिह।

'मैं रामसिहकी प्रतीक्षा कर रहा था और वह आया।' रामसिहके पीठ फेरते ही तपस्वी धीरे-धीरे बुदबुदाया। 'मेरे प्राण आशुतोष प्रभुकी प्रतीक्षा करेंगे और वे दयामय नहीं पधारेंगे। परन्तु इस अधम नीलकण्ठके प्राणोंने उनकी प्रतीक्षा की कहाँ है।'

'पानी !' तपस्वीके होठोंसे अब यह शब्द नहीं निकल रहा था; क्योंकि उसने तो अब दाँत-पर-दाँत दबा लिए थे। किंतु उसके भीतर ज्वरका भीषण दाह—पानीकी माँग अत्यन्त प्रबल हो चुकी थी। उसके प्राणोंमें छटपटाहट चल रही थी।

'अब तो श्रीगङ्गाधरके सरोजारुण करोंसे गङ्गाजल पीना है। तपस्वीका संकल्प स्थिर हो गया। उसने दैहिक

व्यथाकी सर्वथा उपेक्षा कर दी—'वह यहाँ प्राप्त हो या कैलासके दिव्य धाममें।'

जब कोई हठी इस प्रकार हठ कर बैठे, किसीके प्राण सचमुच उस चन्द्रमौलिके लिए ही आकुल हो उठें, कोई उसी विश्वनाथपर भरोसा करके अड़ जाय—वह अपार करुणार्णव वृषभध्वज उससे पलभर भी दूर कहाँ रहता है?

रामसिंह कठिनतासे अपने घरके मार्गमें चौथाई दूर गया होगा—अरण्य वृषभके घंटसे निकली दिव्य प्रणव-ध्वनिसे पूरित हो गया। बाल शशाङ्ककी मृदु किरणें मूर्छितप्राय तपस्वीके भालपर पड़ीं और साथ ही पड़ा एक अमृतस्यन्दी कर। विभूतिभूषण कृत्तिवास प्रभु स्नेहपूर्वक देखते हुए कह रहे थे—'वत्स?'

ज्वर, ज्वरकी ज्वाला और तृषा—'अरे, उन श्रीगङ्गाधरके सम्मुख तो कराल कालकी महाज्वाला भी शान्त हो जाती है। दूर भागती है त्रितापकी ज्वाला उन पार्वतीनाथके श्रीपदोंसे। तपस्वीके प्राण आप्लावित हो गये। उसने नेत्र खोले और वैसे ही मस्तक धर दिया उन सुरासुरवन्दित श्रीचरणोंपर।

'वत्स! गङ्गाजल लाया हूँ मैं।' तपस्वीको स्तवन करनेका समय नहीं मिला। श्रीगङ्गाधरके करोंमें उनका सुधावारिपूरित खप्पर आगे बढ़ चुका था। तपस्वीने मस्तक उठाया और प्रभुने खप्पर उसके अधरोंसे लगा दिया!

× × ×

'यह तो दिव्य भूमि है !' भगवान् आदि शंकराचार्य जब उत्तराखण्डकी ओर पधारे, ऋषिकेश आनेपर पता नहीं किस प्रेरणासे वे गङ्गापार होकर चलते गये पर्वतोंमें और वर्तमान नीलकण्ठ स्थानपर पहुँचे। उन्होंने दोनों पर्वतीय लघु जलधाराओंके संगमके समीप सिद्धवटी (वट, पीपल, पाकरका सम्मिलित तरु) देखा और प्रसन्न हो गये। उन्होंने आचमन किया जलमें और सिद्धवटीके समीप आसीन हुए।

'यहाँ तो भगवान् नीलकण्ठका स्वयम्भूलिङ्ग है।' सहसा भगवान् शंकराचार्यने नेत्र खोले और आसनसे उठ खड़े हुए। उनके निर्देशपर तरुमूलके समीप एकत्र मृत्तिकाराशि साथके सेवकोंने दूर की और उसके नीचेसे श्यामवर्ण भगवान् नीलकण्ठका वाणलिङ्ग प्रकट हो गया। आदि शंकराचार्यके करोंसे ही प्रथमार्चन हुआ नीलकण्ठ भगवान्‌का। तभीसे यह क्षेत्र 'नीलकण्ठ' कहा जाने लगा।

'अपने परम प्रिय आराधकके लिए प्रभु यहाँ व्यक्त हुए और लिङ्गरूपमें उसीकी श्रद्धाको स्वीकार करके सदाके लिए स्थित हो गये।' भगवान् शंकराचार्यने साथके जनोंको उस समय सूचित किया था।

× × ×

हम तो नीलकण्ठमें ग्रीष्मवास करने गये थे। हमें एक संतने बताया था—'भगवान् नीलकण्ठकी स्थापना आदि-शंकराचार्यके करोंसे हुई है।'

स्थापनाकी बातमें कुछ अन्तर था। वह स्थापना नहीं, अभिव्यक्ति और प्रथमार्चन था। हमें बाबा रामझरोखादासजीने बताया था—' भगवान् नीलकण्ठ स्वयम्भूलिङ्ग हैं।'

' वह ऊपर शिखरपर भुवनेश्वरीका मन्दिर है।' एक पर्वतीय भाईने दिखाया था। अपने अनन्य विश्वासीके समीप आकर जब नीलकण्ठ प्रभु वहीं स्थित हो गये, तब अपने उन आराध्यका सतत दर्शन करती देवी भुवनेश्वरी समीपके पर्वतशिखरपर विराजमान हों,—यह सर्वथा स्वाभाविक है।

विश्वास

(१)

'मैं तीर्थयात्रा करने जाऊँगा !' बहुत दिनोंकी अभिलाषा है। 'भगवती अनुसूयाने अपनी गोदमें जहाँ सृष्टिके कर्ता, भर्ता एवं संहर्ता ब्रह्मा-विष्णु-महेशको शिशु बनाकर लोरियाँ सुनायीं, पयस्विनीके उस पुनीत तटके दर्शन करूँगा। जहाँ श्रीराम एवं भरतलालके मिलन-प्रेमके पुनीत प्रभावसे पाषाण भी पिघल उठे थे, उस श्रीकोसलराजकुमारोंके चारु चरणोंसे चर्चित चित्रकूट-की पावन भूमिके दर्शन करूँगा।'

आजके समान उस समय तीर्थयात्रा सरल नहीं थी। न ठीक-ठिकानेसे पथ थे और न पड़ावके स्थान। पैदल यात्री वनके मार्गसे यात्रा करते थे। वनका मार्ग—अकेले दुकेले तो यात्राकी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। यात्रियोंके चालीस-पचासके दल हों तो यात्रा करें। दिन या महीने नहीं, वर्षों लगते थे यात्रामें। घोर कानन, हिंसक पशु, लुटेरे और लुटेरोंसे भी भयंकर पिण्डारे, जिनका काम ही नर-हत्या था। यात्री यात्रा करनेके पूर्व अपने सभी सम्बन्धियोंसे मिल-भेंट लेता था। उसे उसके सम्बन्धी अन्तिम विदाई समझकर ही विदा करते थे। तीर्थयात्रासे कोई जीवित लौट आवे—सौ यात्रियोंमें दस-पांच पुण्यवान् यात्री ही ऐसे हो सकते थे।

यात्रा जितनी कठिन थी, उतनी ही पवित्र थी। श्रद्धा, संयम और तितिक्षाकी कसौटी हो जाती थी।

लेकिन जिसमें वह अदम्य इच्छा उठती थी—एक तो वही है। उसके स्वप्न बड़े भव्य हैं—'जहाँ सूर्यसुता कालिन्दी जह्नुतनया भागीरथीको अङ्कमाल देती हैं, त्रिवेणीके उस भुवनवन्द्य प्रवाहमें स्नान करनेको तो देवता भी पधारते हैं। प्रयाग और फिर काशी—भगवान् विश्वनाथके त्रिशूलपर बसी वह मुक्तिदात्री वाराणसी पुरी, जहाँ चन्द्रशेखर भगवान् नीलकण्ठ जीवोंको दोनों हाथों संसार-सागरसे पार करनेमें नित्य संलग्न रहते हैं।'

भगवान् विश्वनाथके दर्शन हो जायँ और बस! फिर शरीर रहे या जाय, इसकी उसे चिन्ता नहीं। उसकी भव्य भावना पूर्ण हो, इसमें एक ही बाधा थी। उसकी वृद्धा माता उसकी तीर्थयात्राके नामसे ही मस्तक पकड़कर बैठ जाती थीं। बहुत वृद्धा थीं वे। उसका और कोई आधार नहीं। एकमात्र पुत्र वह और माताको छोड़ जाय? मनकी कामना जब मनमें ही घुटती रहती है, प्रायः पुष्ट ही होती जाती है।

'भगवान् विश्वनाथ बड़े दयालु हैं।' जिस दिन वह अपनी माताके शरीरकी भस्म रेवाके प्रवाहमें विसर्जित करके आया, उसे लगा कि उसपर आशुतोषने कृपा की है। माता तो वृद्धा थी, उन्हें जाना ही था।

एक वर्ष—उसे पूरे एक वर्ष क्षण-क्षणपर ऐसा लगता था कि एक पुकार आ रही है। कोई व्यक्त वाणी नहीं, किंतु जैसे कोई उसे पुकार रहा है। भगवान् विश्वनाथ हाथ उठाकर जैसे उसे बुला रहे हों। लेकिन पण्डित कहते थे कि माताका वार्षिक श्राद्ध करके ही वह यात्रा

कर सकता है। एक वर्ष उसे प्रतीक्षा करनी पड़ी।

उसकी यात्राकी सूचीमें एक नाम बढ़ गया है—गया। अब अपने कुलमें वह अकेला है—अन्तिम है। गयामें भगवान् गदाधरके चरणोंमें अपने कुलपुरुषोंके लिए उसे पिण्डपात करना ही चाहिये।

उसके आगे-पीछे कोई है नहीं। थोड़ी-सी भूमि थी, एक घर था, सो सब उसने बेच दिया है। उसे कहाँ अब मालवा लौटकर आना है। काशी गया सो गया। उसे न किसीसे मिलना है, न किसीसे विदा लेनी है। है ही कौन उसके, जिससे उसे विदा लेनी पड़े।

कुछ मित्र, कुछ परिचित, कुछ हितैषी सभीके होते हैं। दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारपरायण लोगोंका भी एक समुदाय होता है। उनके भी मित्र होते हैं। और वह तो बहुत सीधा, बहुत नम्र, सदा सबकी सेवा-सहायतामें ही लगा रहनेवाला था। वह जाय तो गाँव ही नहीं, आसपासके गाँवोंका भी एक विपत्तिका सहारा चला जाय। दूसरा कौन है जो किसीके रोगमें, शोकमें आधी रातको दौड़ पड़े। किसीके उत्सवमें घरके व्यक्तिके समान कार्यमें जुट पड़े, ऐसे मनुष्य क्या बहुत होते हैं? गाँवके लोग, आसपासके लोग, सभी उसे रोकना चाहते हैं।

'अकेले कहीं तीर्थयात्रा की जाती है? इतनी भी क्या शीघ्रता है। बहुत उक्ताहटमें प्राण दे देना तो कोई समझदारी है नहीं। साल-छः महीने और प्रतीक्षा करनी चाहिये। दूसरे-तीसरे वर्ष यात्रियों या व्यापारियोंके दल

निकलते ही रहते हैं। कोई दल निकले तो उसके साथ चले जानेको कोई मना नहीं करेगा। तीर्थयात्रा बहुत पुण्यका काम है, परन्तु प्राण देनेको कूद पड़ना अच्छी बात नहीं है।' गाँवके लोगोंने बहुत समझानेका प्रयत्न किया है।

'मैं भगवान् विश्वनाथके दर्शन करने जा रहा हूँ। वे त्रिशूलपाणि मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो भला, मनुष्य क्या रक्षा कर लेंगे। उनकी ओर चलकर मार्गमें मर भी गया, तो भी मेरा जीवन सफल हो जायगा। उनकी ओर चल देनेपर यात्रा अधूरी रहती कहाँ है।' वह एक वर्ष रुका रहा, यही उसे बहुत अखरा है। जिसके प्राण अपने आराध्यकी पुकार सुनने लगे, उसे कोई बाधा क्या कभी रोक पायी है या आज उसीको रोक लेगी।

(२)

मले-से वस्त्र, बढ़े हुए केश एवं दाढ़ीके बाल, कंधेपर एक लठियामें लटकती गठरी और उसमें ऊपर ही बँधा डोरीके साथ लोटा—यही है उस समयके तीर्थयात्रीकी वेश-भूषा। पैर फट रहे हैं, शरीर दुबला हो रहा है और वह चलता जा रहा है। जहाँ थक जाता है, पेड़की छायामें बैठ जाता है। प्यास लगती है तो नदी, नाले या कुएँसे जल पी लेता है। जहाँ-तहाँ मिलनेवाले लोगोंसे मार्ग पूछता है। प्रायः लोग पूछते हैं कि वह कौन है और कहाँ जायगा। 'अकेले यात्रा!' बहुत लोगोंने स्थान-स्थानपर उससे आग्रह किया कि वह रुक

जाय कुछ महीने। उसकी सब व्यवस्था हो जायगी। उसे कष्ट नहीं होगा। कोई यात्री-समुदाय आवे तो वह चला जाय उसके साथ।

'भगवान्‌के यहाँ तो जीव अकेला ही जाता है न!' उसके लिये यह साधारण तीर्थयात्रा नहीं है। वह तो भगवान् विश्वनाथके यहाँ जा रहा है। वे परम प्रभु उसे पुकार रहे हैं। वह रुक कैसे जाय।

'मुझे मार्गभर बता दीजिये।' इतनी दूरका मार्ग उसे बता कौन दे। उसने बीचके बड़े-बड़े कुछ नगरों, तीर्थोंके नाम रट लिये हैं। उन्हींका नाम पूछते उसे आगे बढ़ना है। अनेक बार वह थोड़ा-बहुत इधर-उधर भटक जाता है। अनेक बार उसे मार्ग पूछने पासकी बस्तीतक अनावश्यक जाना पड़ता है। कई लोगोंसे पूछनेपर कोई मार्ग बता पाता है। अनेक बार लोग उसे दूरतक पहुँचा देते हैं। बीचके मुख्य ग्रामों तथा स्थानोंका पता बता देते हैं। वह तो यात्री है, सुविधाएँ और कठिनाइयोंकी गणना करने बैठे तो उसकी यात्रा कैसे चले। संसारका सनातन यात्री कठिनाइयों और सुविधाओंकी गणना तथा सम्हालमें ही अनन्तकालसे अटका पड़ा है, यह इसको बातको समझ चुका है।

वह तीर्थयात्री है। आज तीर्थयात्रीका भले कोई महत्त्व न हो, एक समय था जब तीर्थयात्री देवताके समान पवित्र माना जाता था। लोग उसे भूमिपर लेटकर प्रणिपात करते हैं। बड़ी नम्रतासे, बड़ी उत्सुकतासे उससे प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी कोई छोटी-सी भेंट

स्वीकार कर ले। वह आतिथ्यका सौभाग्य देकर उनके घरको तथा उन्हें पवित्र कर दे। लेकिन वह तो यात्री है। वह भेटोंका भार ढोने चले तो उसकी यात्रा कैसे चलेगी। उसे तो पेटका गड्ढा भर देनेको एक समय दो सूखी रोटियाँ बस हैं।

भगवान् विश्वनाथ—उसे लगता है कि वे गङ्गाधर त्रिलोकेश उसे पुकार रहे हैं, वे उसके साथ चल रहे हैं, वे उसे लिए जा रहे हैं। दुर्गम वन, अलंघ्य घाटियाँ, दूरूह पर्वत, बड़ा दुस्तर मार्ग है उसका। नगर, ग्राम, झोपड़ियाँ घटती जा रही हैं, घटती जा रही हैं और वन गहन होता जा रहा है। लेकिन उसे तो लगता है कि वह चल नहीं रहा हैं, उसे स्वयं पिनाकपाणि भगवान् शिव लिये जा रहे हैं।

'विश्वनाथ, विश्वनाथ, विश्वनाथ उसकी वाणीको विश्राम नहीं है। उसके मनको विश्राम नहीं है। पर्वतोंके शिलाखण्ड, वृक्षोंकी सघन नीलिमा, वनपशुओंका भयानक गर्जन—उसे सब कहीं अपने विश्वनाथकी छवि या उनकी पदध्वनि सुनायी पड़ती है। कहीं वे आशुतोष वृषभध्वज समाधि लगाये शान्त बैठे दीखते हैं और कहीं वे त्रिलोचन कपालमाली हाथमें डमरू लिए ताण्डवमें मग्न प्रतीत होते हैं। वे कुछ भी करें, उसके नाथ—विश्वनाथ हैं।

फूत्कार करके सर्प सरक जाते हैं, चर्र-मर्र करते भेड़िये घूरते हैं और भाग जाते हैं, चीते, तेंदुए, बाघ—लेकिन उसे कोई दीखता नहीं, उसे कोई सूँघतातक

नहीं। उसे तो एक दृश्य दीखता है— भव्य उत्तुङ्ग मन्दिर, आकाशमें दूसरे दिवाकर-सा दम-दम दमकता उसका स्वर्णकलश और उसपर उड़ता श्वेत वृषभध्वज। काशीका कभीका न देखा विश्वनाथ मन्दिर उसका जैसे युग-युगका देखा है। वह अविरत देख रहा है उसे। यह वन, ये पर्वत, ये हिंस्र वनपशु— लेकिन उसके विश्वनाथ गिरीश हैं न। ये तो सब उनके सहचर हैं। उनके अपने है। वह स्वयं भी तो विश्वनाथका है।

वनपशु क्रूर होते हैं, हिंसक होते हैं; किंतु वे कपटी नहीं होते। वे अपने अन्तरमें कुछ छिपाकर कुछ दूसरा ऊपरसे दिखा नहीं सकते। जब किसीका हृदय हिंसासे शून्य हो जाता है, वनपशुओंकी हिंसावृत्ति उसके लिए नहीं होती। वे भी उसको देखकर प्रसन्न होते हैं। उसके आगे पूँछ हिलाकर उसका वे भी स्वागत करते हैं— 'आप भले आये!'

केवल सृष्टिमें एक ही प्राणी है जो सबसे भिन्न है। वह बाहर क्या है और भीतर क्या है, कोई कह नहीं सकता। वह बने तो देवता है, बने तो दानव है और फिर तो वह ऐसा भी कुछ बन रहता है कि पिशाच भी उसके बराबर बैठनेमें अपना अपमान अनुभव करे। वनोंमें विभिन्न वेश बनाये दल-के-दल या अकेले घूमनेवाले वे मनुष्य भी तो कम नहीं हैं, जो मनुष्योंकी ही घातमें रहते हैं। कोई हिंस्र पशु अपनी जातिके पशुको नहीं खाता— अकारण नहीं मारता। पशुने तो विश्वासघात सीखा ही नहीं। लेकिन मध्य भारतके

वनोंमें बसनेवाले पिण्डारे—विश्वास दिलाकर हत्या कर देनेको ही, जिन्होंने व्यवसाय बना लिया था, मनुष्य वहाँ मनुष्यपर विश्वास करे तो क्या हो उसका, यह आप समझ सकते हैं।

वह भयानक वनोंमें रात्रिमें एक शिलापर एक चद्दर बिछाकर सो रहता है। उसे चिन्ता नहीं कि वहाँ रात्रिको वनराज पधारेंगे या नागराज। वर्षामें किसी गुफामें बिना सोचे आश्रय लेने पहुँच जाता है, भले वहाँ पहलेसे कोई चीता या रीछ घुसा बैठा हो। उसे अब लगता ही नहीं कि कोई उसका शत्रु है, कोई उसे हानि भी पहुँचा सकता है। यह सब तो ठीक; किंतु उस दिन वह एक पिण्डारेसे ही मार्ग पूछ बैठा था। पिण्डारा और मार्ग बतायेगा? उसे पता ही कहाँ था कि वह पिण्डारा है। उसे मार्ग तो किसी-न-किसीसे पूछना ही था और पास कोई स्थान हो तो वहाँ रात्रि विश्राम भी करना था।

जो होना था, वही हुआ। पिण्डारेका सदाका बहाना कि वह भी उधरका ही यात्री है, जिधर यात्री जा रहा है। रात्रि-विश्रामके लिए वह जहाँ रुका—पिण्डारेकी इच्छासे ही रुका और वह पिण्डारोंका अड्डा था। वह थी कार्तिककी कृष्णपक्षकी चतुर्दशी। प्रत्येक पिण्डारेको इस दिन अपनी आराधनामें एक बलि देनी ठहरी—एक मनुष्यका गला घोंटना ठहरा।

(३)

'मैं उसे जगा देता हूँ।' तीर्थयात्रीके साथ आये पिण्डारेको अब पहचाना जा सकता है। वह अपने

साथियोंसे घिरा बैठा है और उनका सरदार है।

'वैसे इसमें कोई हानि नहीं है। उसके चिल्लानेको यहाँ कोई सुननेवाला है नहीं और अकेला वह हमसे बचकर जा कहाँ सकता है।' एक युवक पिण्डारेने कहा— 'लेकिन इतनी खटपट क्यों? वह खर्राटे लेकर सो रहा है।'

उसने बिना कहे, बिना पूछे अपनी गठरी मुझे रखनेके लिए दे दी। उसने मुझे बताया है कि गठरीमें कपड़े, सत्तू, नमकके अतिरिक्त चार सौ सत्रह रुपये भी हैं। उसने मुझे भी तीर्थयात्री समझा और मुझपर विश्वास किया।' सरदारने मस्तक झुका रक्खा था। वह कुछ सोच रहा था।

'बहुत सीधा शिकार है।' एक तरुण हँसते हुए बोला। 'वैसे चौकन्नेसे चौकन्ना शिकार भी हमारे सरदारके हाथसे निकल नहीं सकता था। किसीका विश्वास कैसे पाया जाता है, यह बात तो अभी हमें सरदारसे बहुत सीखनी है।'

'हम सदा विश्वास प्राप्त करते हैं और फिर उस विश्वास करनेवालेको अवसर देखकर इस लोकसे विदा कर देते हैं। बचपनसे ही मैंने इसे सीखा है और किया है।' सरदारके स्वरमें आज उत्साह नहीं है। आज जैसे उसे अपने पिछले कर्मोंपर खेद हो रहा है। 'लेकिन आज मैं इस यात्रीके साथ विश्वासघात नहीं कर सकूँगा। मैं उसे जगा देता हूँ, उसे यहाँसे मेरे वनसे बाहर चले जाने दो और फिर तुम [illegible] है।

दो क्षण तो सब-के-सब सरदारकी ओर देखते रह गये। एक पिण्डारा और दयाकी बात करे? उनमें-से जो सबसे बड़ा था, दलमें जो सरदारके बाद आता था, उसने कहा—'आज चौदसकी रात है। एक भी दूसरा शिकार मिला नहीं है। हम सब मन मारकर बैठे हैं कि सरदारके हाथ ही यह काम आज कर लें। आप आजके दिन यह कहाँका राग ले बैठे।'

'तुम जो कहते हो, वह मैंने भी सोचा था। मैं जानता हूँ कि आजका दिन खाली गया तो पूरा वर्ष खाली ही जाना ठहरा। मैं गया था, उसके गलेमें रूमाल लपेट चुका था, एक बार अँगुलियाँ कस जातीं—एक झटका और बस।' सरदारने अपना वह रूमाल, जिसके बीचमें और दोनों छोरोंपर गाठें थीं, जेबसे निकाला। इस रूमालने कितनी हत्याएँ की थीं, इसका कुछ ठिकाना नहीं था। कोई बोले, रोके, तबतक तो सरदारने रूमालकी गाँठें खोल दीं। एक पिण्डारेके रूमालकी गाँठें खुल जाना उनके दलमें कोई साधारण घटना नहीं थी। पिण्डारा भले टुकड़े-टुकड़े काट दिया जाय, उसके रूमालकी गाँठ न खुले। गाँठ खुली और पिण्डारेका पिण्डारापन फिर कहाँ। लेकिन सरदारके लिए जैसे साधारण रूमालकी गाँठ खोली गयी हो—'अब जब पूरा जीवन ही खाली जाना है तो एक वर्षके खाली-भरेकी बात कौन सोचे।' उसने रूमालको हवामें झाड़ दिया, जैसे अपने पिछले समस्त पाप झाड़े दे रहा हो।

'हो चुका!' सरदारसे जो छोटा था, उसने

सरदारका पद सँभाल लिया—'आप हमारे इतने दिनों सरदार रहे, इसलिए हम इतना ही कह सकते हैं कि आप भीतरी गाँवपर चले जायँ।'

पिण्डारोंका एक अड्डा था घोर वनमें। बूढ़े, असमर्थ, रोगी पिण्डारे वहीं रहते थे। पिण्डारोंका दल वहाँके लोगोंका पालन-पोषण करता था। पिण्डारोंकी भाषामें वह 'भीतरी गाँव' था।

'उसने मुझे गठरी दी, तब मैंने पूछा था कि तुम मुझपर विश्वास क्यों करते हो ? मैं पिण्डारा होऊँ तो ?' सरदारके मुखकी भंगी विचित्र रूपसे गम्भीर और दृढ़ हो गयी थी। उसने हँसकर कहा था—'मैं मनुष्यपर कहाँ विश्वास करता हूँ। मैं तो भगवान् विश्वनाथपर विश्वास करता हूँ और वे तुम्हारे भीतर भी हैं ही। तुम पिण्डारे हो या और कोई हो, मुझे इस प्रपञ्चसे क्या।'

'उसका क्या होगा, इस झगड़ेमें अब आपके पड़नेकी आवश्यकता नहीं है।' नये सरदारने आज्ञाके कठोर स्वरमें कहा। अपना रूमाल उसने अपने हाथमें ले लिया। 'आजका दिन हम सूना नहीं जाने दे सकते।'

'मैं उसे लाया हूँ।' बूढ़ा सरदार उठकर खड़ा हो गया। 'मैं उसे जगा देता हूँ। सावधान कर देता हूँ।'

नया सरदार एक बार हिचक गया। बूढ़ेके स्वरमें जो प्रचण्डता और दृढ़ता थी—अभी दो क्षण पहलेतक जो उनका सरदार था, उससे हाथापाई किये बिना काम चल जाय, ऐसा ही मार्ग उसे निकालना था। उसने झल्लाहटभरे स्वरमें कहा—'आप अपना काम शीघ्र

पूरा कर लें तो अच्छा।'

बूढ़े सरदारने उस यात्रीको जगा दिया। उसे परिस्थिति समझा दी। दस-बारह दढ़ियल मुँहको साफेमें लपेटे हट्टे-कट्टे पुरुष बूढ़ेसे चार गज पीछे खड़े हैं, यह उसने देख लिया। लेकिन उसके मुखपर तो चिन्ताकी एक रेखातक नहीं आयी। बड़ी सरलतासे उसने कहा—'मुझे सबेरे ही चल देना है। दिनभरका थका हूँ। आप इस समय हँसी करें, यह अच्छा नहीं लगता। मुझे सोने दीजिये।'

'इतना निर्भय! इतना भोला!' बूढ़ेके नेत्र भर आये। उसे लगा कि उसका अपना ही पुत्र वहाँ सो रहा है। उसने यात्रीको झकझोर दिया—'भले आदमी! मैं हँसी नहीं करता। तेरे प्राणके ग्राहक वे खड़े हैं बारह यमदूत। तू उठ और……।' लेकिन और क्या? बूढ़ेकी समझमें भी नहीं आता कि उठकर भी वह क्या कर सकेगा।

'कौन? कहाँ हैं यमदूत?' उसने केवल सिर उठाकर देखा—'ये सब मेरे भगवान् विश्वनाथ ही हैं। प्रलयंकर हैं वे मेरे प्रभु, सो तो मैं जानता हूँ; किंतु अपने स्वामी-की शरणमें सोनेमें दासको क्या भय है।' सचमुच वह तो फिर सोनेके प्रयत्नमें लग गया।

'अब जो तुम लोग चाहो।' बूढ़ेको लगा कि जब इसे मरना ही है तो जगते हुए हाथ-पैर पटककर कष्टसे मरे, इससे तो इसी प्रकार सोते हुए चुपचाप सदाको सो जाना कम कष्टकर है।

'जी ! आपका काम हो चुका।' नया सरदार कहनेको तो कह गया और आगे भी बढ़ आया ; किंतु उसके हाथमें उठा रूमाल हाथसे छूटकर गिर पड़ा। यात्री करवट बदल रहा था उस समय और पता नहीं क्यों आधी नींद-जैसे स्वरमें कुछ हँसता-सा कह रहा था—'विश्वनाथ ! मेरे प्रभु !'

'अपशकुन हो गया।' सच तो यह है कि नये सरदारको पता नहीं क्यों लगता था कि उसके हाथ काँप रहे हैं, उसका रक्त जमा जा रहा है, उसका हृदय धड़क रहा है। वह यात्रीकी ओर देख नहीं पा रहा था। अपना रूमाल लेकर वह घूम पड़ा—'इसे जाने दो !' आज अशकुन हो रहा है।'

'जाने दो तब !' कोई नहीं देखता था कि बूढ़ा सरदार हँस रहा था। उसका यह यात्री—अद्भुत है यह यात्री। पिण्डारे-सा हत्यारा भी जिसे देखकर पिघल उठे। लेकिन वह भगवान् विश्वनाथका विश्वासी - उन सर्वेश्वरपर विश्वास करनेवालेको कभी कहीं भय रहा भी है कि आज ही रहेगा। वह सो रहा है मजेसे। वह तो सदा ही मजेसे सोता है।

शरीर अनित्य है

लोग पागल कहते हैं वैद्यराज चिन्तामणिजीको, यद्यपि सबको यह स्वीकार है कि उनके हाथमें यश है। नाडीज्ञानमें अद्वितीय हैं और उनके निदानमें भूल नहीं हुआ करती। वे जब चिकित्सा करते हैं, मरतेको जीवन दे देते हैं; किंतु अपने पागलपनसे उन्हें जब अवकाश मिले चिकित्सा करनेका।

इतना निपुण चिकित्सक—उसके हाथमें लोहेको सोना करनेवाली विद्या थी। वह अपना व्यवसाय किये जाता—लक्ष्मी पैर तोड़ उसके घरमें बैठनेको प्रस्तुत कब नहीं थी; किंतु पता नहीं कहाँसे एक जटाधारी भभूतिया साधु आ मरा इस बेचारे ब्राह्मणके यहाँ। इसे किसे पता क्या-क्या कह गया और पाँच-सात ताड़पत्र दे गया। उन ताड़पत्रोंपर क्या लिखा है, कोई कैसे बताये। वैद्यराज प्राणोंके साथ उन्हें चिपकाये फिरता है। घरकी जमा पूँजी भी इसने फूँक डाली। धुन चढ़ी थी इसे पारद-भस्म बनानेकी। ताँबेको सोना बनाना चाहता था। घर आता सोना छोड़कर स्वप्नके सोनेके पीछे इसने घर भी फूँक डाला।

सनकी है चिन्तामणि। उससे कोई पूछे, समझाये तो हँस देता है। सारे संसारको मूर्ख मान लिया है उसने। अब उसे अमर बननेकी सनक चढ़ी है। बहुत उमंगमें होगा तो अपने उन सड़े गले ताड़पत्रोंका एकाध श्लोक बोल देगा।

अब यह चिड़ियोंके समान आकाशमें उड़ने और अमर बननेकी धुनमें है। ऋषि-मुनियोंकी बातोंपर हमें संदेह नहीं करना चाहिये ; किंतु ये बातें ऋषियोंके योग्य हैं। इनका रहस्य वे ही जानते थे। ऐसी बातोंके पीछे पड़नेसे इस कलियुगमें कोई लाभ नहीं।

आज बारह वर्ष तो हो गये चिन्तामणिको। क्या पाया उसने ? कितने माशे स्वर्ण बना सका ! अबतक अपने काममें लगा रहता तो सोनेका महल बना लेता। घरपर मोटर ही नहीं, हवाई जहाज खड़ा कर लेता और मनमाना उड़ता आकाशमें। रही अमर होनेकी बात, सो इस युगमें तो कोई अमर हुआ नहीं, होता नहीं।

अब बच्चे भूखके मारे पड़ोसियोंके घर चक्कर काटते है। पण्डितानीकी साड़ीमें पेबंद लगते हैं। लोग ब्राह्मण समझकर अन्न घर न पहुँचा दिया करें तो चूल्हेमें चूहे डंड करें और पण्डितजीको अपनी सनकसे अवकाश नहीं। आज नर्मदा-किनारे जानेको टिकट कटा रहे हैं और कल हरद्वार या कामरूपको। कर्ज ले-लेकर अब यात्राएँ करने लगे हैं। इतनी लंबी यात्रा करके, इतना कष्ट उठाकर जब लौटेंगे—शरीर सूखकर काँटा हुआ मिलेगा। लायेंगे कुछ घास-फूस और उनकी बातें सुनो उस समय लगेगा जैसे संसारका सारा खजाना लूट लाये हों।

'यह बाजारमें मिलनेवाला कृष्णवर्ण शूद्र पारद है।' पण्डितजीकी सनक अब उनके एक शिष्यपर भी चढ़ने लगी है, उसे भी वे चौपट करनेपर तुले हैं। उसे पारदमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि वर्ण बताया करते हैं—'स्वर्ण

बन सकता है पीतवर्ण वैश्य पारदसे। आकाशमें उड़नेकी शक्ति तथा अमरत्व प्रदान करनेमें उज्ज्वल क्षत्रिय पारद समर्थ है और यदि कहीं रक्तवर्ण विप्र पारद मिल जाय—मुक्तिका साधन ही मिल गया समझो।'

वैद्यराजकी कल्पनासे बाहर भी इन पारदोंका कोई अस्तित्व है, मुझे तो इसमें पूरा संदेह है। वैसे वे कहा करते हैं—'भगवान् दत्तात्रेयने रसेश्वर सम्प्रदायका प्रवर्तन किया। सिद्ध रसका सेवन करनेसे अनामय, सुपुष्ट, अमर शरीर प्राप्त होता है और तब उस शरीरसे निर्विघ्न योगके साधन किये जा सकते हैं।'

यह सब उन ताड़पत्रोंमें नहीं लिखा हो सकता। इन बारह वर्षोंमें ये पण्डितजी यही सब संग्रह करते रहे हैं। पारदके सम्बन्धमें यहाँ क्या लिखा है, यह सब अब आप इनसे पूछ सकते हैं। यह बात दूसरी है कि उसमें कितना सत्य है और कितना ऐसे ही सनकी लोगोंका लिखा है, यह जाननेका कोई साधन अब किसीके पास नहीं है।

हिंगुलोत्थ पारद भी केवल शुद्ध शुद्र पारद ही है। उससे सेवा ही सम्पन्न हो सकती है। रोगीके लिए औषध बननेसे अधिक उसका उपयोग नहीं है।' वैद्यराजकी सम्मति है कि—'यह शूद्र-युग है। इसमें शेष तीनों पारद लुप्त हो गये हैं। अब उन्हें भगवान दत्ताकी कृपाके बिना पाना असम्भव है।'

घरके लोगोंको चाहे जितना शोक हो, यह अनिवार्य था कि वैद्यराज भगवान् दत्ताकी कृपा प्राप्त करनेका प्रयत्न करते। उन्होंने क्या मार्ग अपनाया कृपा प्राप्त करनेका,

किसीको बता नहीं गये, केवल चले गये घरसे। इस बार अकस्मात् चले गये घरसे बिना किसीसे कुछ कहे और अब महीना बीत गया, उनका कोई समाचार नहीं है।

× × ×

गिरनारके शिखरोंकी चढ़ाई आज भी सुगम नहीं है। यद्यपि श्रद्धालु सम्पन्न जनोंने सीढ़ियाँ बना दी हैं, फिर भी दत्तशिखरतक पहुँचते-पहुँचते लगभग दस सहस्र सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। कौन हाँफ नहीं जायगा। उससे पर्याप्त आगे वह महाकाली-शिखर-- दूरसे ही उसे प्रणाम कर लिया जा सकता है। कोई अत्यधिक साहस करे, तो भी उसे रात्रि गोरख-शिखरपर व्यतीत करनी चाहिये और प्रातः भगवान् दत्तात्रेयकी पादुकाका वन्दन करते आगे बढ़ना चाहिये। इसी प्रकार वह महाकालीकी गुफामें उनके श्रीचरणोंतक पहुँच सकता है।

महाकाली-शिखरतक कदाचित् ही कोई यात्री पहुँच पाता है। इससे अधिक एकान्त चाहिये तो फिर कहीं शेरकी माँद चुननी होगी। वैसे शेर तो आते हैं गिरनारके पदप्रान्ततक। यह महाकाली-गुफा तो उनके क्रीड़ाक्षेत्रमें है। सिंहवाहिनीके भवनमें सिंह न आवे तो आवेगा कहाँ।

आजकल एक वृद्ध आ बैठा है महाकाली-गुफामें। गौरवर्ण, तनिक दुहरा देह, जिसपर झुर्रियाँ पड़ी हैं, मस्तकके समस्त केश उज्ज्वल, बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी-मूँछें; किंतु वह साधु नहीं है। उसके शरीरपर एक

कुर्ता है मैला-सा और कटिमें मैली धोती है। सम्भवत: यात्राने उसके वस्त्र मैले कर दिये हैं और यहाँ उन्हें स्वच्छ करनेको साबुन कहाँसे पाये वह। उसके पास एक लोटा है, एक कम्बल है बिछानेको, एक चद्दर है—बहुत सीमित सामग्री है उसके साथ।

पासके स्रोतमें स्नान कर लेता है और लोटेके जलसे जगदम्बाकी मूर्तिको भी स्नान करा देता है। आप इसीको पूजा कहते हों तो कह लें; क्योंकि पूजाका और कोई उपकरण उसके पास नहीं है। आज सात दिन उसे यहाँ आये हो गये। ये सात दिन उसने केवल समीपके स्रोतके जलपर काटे हैं। अब चाहे तो भी शरीरमें इतनी शक्ति नहीं कि गिरनारकी चढ़ाई पार करके गोरख-शिखरतक भी पहुँच सके।

'वहाँ शेर आते हैं। संध्यासे पहले गोरख-शिखर लौट आना!' सात दिन पूर्व जब वह जूनागढ़से चला था, उसका विचार जानकर एक स्थानीय सज्जनने उसे सावधान किया था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। लौट आने तो वह आया नहीं। सिंहवाहिनीकी शरणमें जो पड़ा है, उसे शेर कैसे खा जायगा? आज सातवीं रात्रि प्रारम्भ हुई है। पिछली छः रात्रियोंमें तो उसने शेरको देखा भी नहीं। वैसे वनमें वनपशुकी दहाड़ आती है, इसमें अद्भुत क्या है?

आज उसे स्नान करनेमें कष्ट हुआ है। अब उठनेमें चक्कर आता है। चलते समय नेत्रोंके आगे अन्धकार छा जाता है। कदाचित् कल स्रोततक खिसककर जाना

पड़े। अन्नमें प्राण हैं इस युगमें और सात दिनसे वह केवल जल पीकर रहा है।

'मा ! जगज्जननी ! यदि मैं अधिकारी नहीं हूँ तो मुझे तुमने इधर क्यों आकृष्ट किया ?' आज वह जगदम्बाकी मूर्तिके सम्मुख घुटने टेके बैठा है रात्रिके प्रथम प्रहरसे ही—'अब मैं यहाँसे जानेवाला नहीं हूँ। शरीर यहीं छूटेगा। भगवान् दत्तको मैं कहाँ ढूँढूँ। तुम सर्वेश्वरी हो, सर्वशक्तिमयी हो और यहाँ गिरनारकी—दत्तके आश्रमकी अधिष्ठात्री होकर बैठी हो। मैं तुम्हें ब्रह्महत्या देकर मरूँगा ! कपालिनी ! इस ब्राह्मणका कपाल तुम्हारी मुण्डमालामें रहकर भी तुम्हें कोसता रहेगा !'

ब्राह्मण अपनी हठपर उतर आया था। उसका परम बल है अनशन और वह अनशन किये बैठा था जगद्धात्री जगदीश्वरीके द्वारपर—उस द्वारपर जहाँसे कोई कभी निराश नहीं लौटा। पागल ब्राह्मण—अरे, माँके यहाँ अनशनकी आवश्यकता ? जहाँ सहज स्नेहसे माँसे कुछ भी माँग लिया जा सकता है, अपनी अश्रद्धासे आकुल अविश्वस्त ब्राह्मण वहाँ अनशन किये बैठा है।

'हैं !' मरण इतना सरल नहीं है। ब्राह्मण भयसे चौंक पड़ा। उसे लगा कि गुफामें शेर आ गया है और वह पीछेसे उसे सूँघ रहा है। उसने चौंककर पीछे देखा—कुत्ता, केवल एक कुत्ता था उसके समीप। सिरसे पैरतक काला, सुपुष्ट कुत्ता और वह अब भी पूँछ हिलाता ब्राह्मणको स्नेहपूर्व सूँघे जा रहा था। जैसे वह

प्रयत्न कर रहा था पहचाननेका कि यह व्यक्ति उसका कोई परिचित है या नहीं।

'कुत्ता ! यहाँ ! इस समय अर्धरात्रिमें !' ब्राह्मण उस तगड़े, सुन्दर काले कुत्तेको इस प्रकार देख रहा था जैसे कोई अद्भुत प्राणी देख रहा हो—'कैसे आया यह ? मुझे क्यों सूँघ रहा है ? भौंकता क्यों नहीं ?'

ब्राह्मणको अधिक सोचते रहनेका समय मिला नहीं। कुत्ता उसके कुर्तेका छोर मुखमें लेकर बार-बार खींचने लगा था। ब्राह्मणको लगा, वह कुछ कर रहा है। 'क्या चाहते हो तुम ? कहाँ ले चलना चाहते हो मुझे ? तुम्हारे साथ चलूँ ?'

ब्राह्मण किसी प्रकार उठ खड़ा हुआ। कुत्तेने कुर्ता छोड़ दिया और आगे-आगे चलने लगा। अब ब्राह्मणने उसका अनुगमन करना स्वीकार कर लिया था।

× × ×

'रससिद्धि सांसारिक विषयभोगमें लिप्त रहकर मानवको पशुप्राय बननेमें सहायक होनेके लिए नहीं है !' ज्योत्स्ना-स्नात स्वच्छ शिलापर जलस्रोतके समीप एक ज्योतिर्मयी मूर्ति आसीन थी। दो श्वान शिलासे नीचे बैठे थे। तीसरा भी ब्राह्मणको कुछ दूर छोड़ दौड़ आया था और उनके पास ही शान्त बैठ गया था। ब्राह्मणकी दृष्टि गयी उधर—धन्य हो गया जीवन। प्रणिपात करते वह पृथ्वी-पर गिर पड़ा। कुछ क्षण लगे आश्वस्त होकर उठनेमें। उसके कण्ठसे स्वर नहीं निकल रहा था। प्रभुके संकेतपर

वह शिलाके समीप बद्धाञ्जलि बैठ गया था। प्रभु अपने मेघगम्भीर स्वरमें कह रहे थे—'अक्षीणवासन सत्पुरुष अपनी साधनासे सृष्टिमें सत्त्वगुणको सुरक्षा देते रहें, उनका संकल्प लोकमें मङ्गलका विस्तार करे, इसलिए मैंने रससिद्धिका प्राकट्य किया।'

'यह क्षुद्र आज्ञाका अनुवर्तन करेगा।' किसी प्रकार ब्राह्मण कह सका।

'आज्ञाके अनुवर्तनकी बात नहीं।' भगवान् दत्तात्रेय प्रशान्त बने थे। 'रससिद्धि किसीकी किसी कामनाकी पूर्तिका साधन नहीं। वह सृष्टिका निगूढ़ रहस्य है और केवल उन सिद्धसत्त्व अधिकारियोंके लिए है, जिनका 'अहं' सर्वात्माको अर्पित हो चुका है।'

'श्रीचरणोंके समीप आकर भी मैं अभागा ही रहूँगा।' ब्राह्मण क्रन्दन कर उठा।

'अच्छा, तुम देखो!' प्रभुकी अर्धोन्मीलित दृष्टि एक बार उठ गयी ब्राह्मणकी ओर।

'हे भगवान्!' कुछ क्षणमें चीत्कार कर उठा ब्राह्मण। वह क्या देख रहा है—उसकी स्त्री मर गयी, पुत्र वृद्ध हुए और मर गये। पौत्र मरणासन्न पड़ा है······ उसके कुलमें कोई नहीं रहा। कोई नहीं रहा उसके परिचितोंमें, सम्बन्धियोंमें। वह जिससे स्नेह करता है, वही मर जाता है। मृत्यु–मृत्यु! आज यह, कल वह। परसों तीसरा—वर्ष जैसे छोटे हो गये हैं। उसे रोना-- केवल मरनेवालोंके लिए रोना रह गया है। क्यों जीता रहे, किसके लिए? अमरत्व—उसे अमरत्वका प्रसाद

मिला है रुदन ! चिल्ला उठा वह—' नहीं चाहिये ऐसा अमरत्व !'

' इस शरीरका धर्म है नष्ट होना। तुम जिन्हें अमर मानते हो, वे भी मरेंगे।' ब्राह्मण जब उस दृश्यसे उपरत होकर आश्वस्त हुआ, प्रभु कह रहे थे—' ब्रह्माको भी जब मरना है, तब उनकी सृष्टिके प्राणी अमर कैसे हो सकते हैं। आज जो रससिद्धिसे अमर हुए हैं, उनका अमरत्व कल्पपर्यन्त है। केवल ब्रह्माके एक दिन वे जी सकते हैं। मृत्यु शरीरका धर्म है।'

' मैं मूर्ख हो गया था।' ब्राह्मणमें अब कोई आग्रह रह नहीं गया था।

' तुम रससिद्धिका संकल्प लेकर आये, वह तुम्हें प्राप्त होगी।' भगवान्के अद्भुत भाव कौन समझे— ' किंतु इस शरीरके शान्त होनेतक सन्तोष करो। इसके प्रारब्धको पूर्ण हो लेने दो। शरीर और उसके सुखभोगकी वासनाएं समाप्त कर लो पहिले इसी शरीरमें।

× × ×

वैद्यराज चिन्तामणि दूसरे महीने घर लौट आये। उनके पुत्र और स्त्रीको ही उन्हें पहिचाननेमें प्रयत्न करना पड़ा। स्वर और आकृतिमात्र ही तो थी वह। सुन्दर सुपुष्ट शरीर एक तरुण आकर कहे कि ' मैं चिन्तामणि हूँ ' तो कोई झटपट कैसे विश्वास कर ले। क्या हुआ जो उसके केश उज्ज्वल थे। बड़ा आश्चर्य हुआ लोगोंको।

' आपने रससिद्धि प्राप्त कर ली ?' चिन्तामणिसे

बार-बार पूछा गया यह प्रश्न ; किंतु उन्होंने किसीको उत्तर नहीं दिया। हँसकर इसका उत्तर वे टाल दिया करते थे।

इस बार घर आते ही वे जुट गये अपने व्यवसायमें। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इनका पागलपन तो गया। एक वर्षमें ही उन्होंने कन्याका विवाह कर दिया। बड़े पुत्रको अपने व्यवसायमें लगा दिया।

'सती ! शरीरका ठिकाना नहीं। मौत सिरपर खड़ी है। मन इन बाल-बच्चोंसे हटकर भगवान्में लगाओ तो अच्छा।' बार-बार वे स्त्रीको समझाते रहे हैं और ये बातें अब महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं, जब कि फिर वैद्यराज सहसा घरसे चले गये हैं। इस बार वे एक कागज छोड़ गये हैं। उसमें लिखा है—'शरीर अनित्य है। अब इसके लौटनेकी आशा नहीं करना चाहिये। प्रभुके भजनमें ही सबका मङ्गल है। तो वैद्यराजको भी रससिद्धि नहीं मिली ? वे भी अमर नहीं हो सके ?'

अर्चावतार

' स्वामी दयानन्दजी बच्चे थे, तभी वे समझ गये थे कि मूर्ति भगवान् नहीं है और आप......।

'आप स्वामी दयानन्दजीकी बात नहीं कर रहे हैं' उन विद्वान्को बीचमें ही रोककर मैंने कहा—'आप तो बालक मूलशंकरकी बात कर हैं इस समय। स्वामी दयानन्दजी तो वे बहुत पीछे हुए और आप भी जानते हैं कि स्वामी होनेके बाद भी कई वर्षोंतक दयानन्दजी शिवमूर्तिकी पूजा करते रहे हैं।'

'किंतु उन्होंने मूर्तिपूजाका खण्डन किया है।' मेरी बातको अस्वीकार करनेकी तो स्थिति थी नहीं। उन्होंने दूसरे ढंगसे अपनी बात कही—' बचपनमें जिस सत्यका साक्षात्कार उन्होंने किया था...... ।'

' वह सत्यका साक्षात्कार नहीं था, कल्पना थी।' मैंने कहा—' निर्णयका भार मैं आपपर छोड़ता हूँ। आप बताइये, यदि स्वामीजी आज जीवित होते और उनपर कोई बच्चा मुट्ठीभर धूल फेंक देता तो वे उसे क्या डंडा लेकर मारने दौड़ते ?'

' आप भी कैसी बात कर रहे हैं।' उन सज्जनने कहा—' स्वामीजीने अपने प्रति किये गये बड़े-बड़े अपराधोंको भी क्षमा ही किया है। उनका जीवन तो अद्भुत क्षमाशील रहा है।'

' यह सत्य है कि श्रीस्वामीजी बड़े क्षमाशील थे, पर जिस सर्वशक्तिमान् क्षमासिन्धुकी अनन्त क्षमाका एक

कण पाकर महात्मा संत क्षमाशील होते हैं, उस परमात्मा-की क्षमाशीलताका अनुमान कोई कैसे कर सकता है।' मैंने कहा—' वही अनन्त करुणावरुणालय अनन्त क्षमा-शील परमात्मा अपनी मूर्तिपर चढ़कर घूमते और चढ़े हुए अक्षतको खाते एक चूहेको वैसा करने देता है, इससे मूर्तिमें ईश्वर नहीं हैं, ऐसा सत्य कहाँसे आ गया ? आप आशा करते हैं कि अपनी ही सृष्टिके एक अबोध शिशुको, जो प्रसादसे उदरपूर्तिके प्रयत्नमें है, वह जगन्नियन्ता शिव त्रिशूल लेकर मारने दौड़ेगा ?'

' लेकिन मूर्ति तो परमात्मा नहीं है, वह तो···'

' निश्चय ही मूर्ति परमात्मा नहीं है, मूर्ति तो सदा ही जड़ होती है।' मैंने बीचमें उन्हें फिर रोक दिया।

' तब जड़की पूजा आप क्यों करते हैं ?' इस बार उत्साहपूर्वक वे बोले—'पूजा तो चेतनकी की जानी चाहिये।'

' यदि आपको मूर्तिकी ही पूजा करनी हो ' मैंने अपने ढंगपर उनसे पूछा—' आप पत्थर, धातु, काष्ठ आदिकी मूर्तियोंमें-से कोई पसंद करेंगे या कसाईके यहाँसे मांस लाकर कोई मूर्ति बना दी जाय तो उसे ?'

' छि: ! ' नैष्ठिक शाकाहारी होनेके कारण उन्होंने नाक सिकोड़ ली। वे ऐसा ही कुछ करेंगे, यह आशा मुझे पहलेसे थी।

' लेकिन आप धातु आदिकी मूर्तियोंके पूजनका विरोध कर रहे हैं और गुरु, माता-पिता आदि जिनके पूजनका प्रतिपादन करते हैं, उनके मांस-हड्डी-चमड़ेसे

बने शरीरकी गंदी जड़ मूर्तिकी ही तो पूजा करते हैं आप। पूजाके लिए उनमें रहनेवाला चेतन कभी मिला है आपको ?'

'जड़ शरीरके माध्यमसे चेतनकी पूजा करते हैं हम वहाँ।' मेरे वे सम्मान्य मित्र दर्शन-शास्त्रसे गुरुकुलके स्नातक हैं। इसलिए मेरी बात समझनेमें उन्हें कठिनाई नहीं हुई। वे स्वतः बोले—'बिना जड़के माध्यमके चेतनके साथ सम्पर्क नहीं बनाया जा सकता।'

'माता-पिता आदिके शरीरमें चेतन जीव है। उस शरीरकी सेवासे उसे प्रसन्नता होती है। अतः शरीरकी सेवा उस शरीरमें रहनेवाले चेतनकी सेवा है। यह आपकी बात ठीक ही है।' मैंने उनसे कहा—'ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है और सर्वान्तर्यामी है। जो सर्वव्यापी है, वह मूर्तिमें भी है ही। मूर्तिकी पूजा करनेवाला अनीश्वरकी नहीं, मूर्तिके माध्यमसे ईश्वरकी पूजा करता है और यह बात ईश्वर जानता है। तब मूर्तिपूजा ईश्वरकी साक्षात् पूजा नहीं है, यह बात आप कहते कैसे हैं ?'

'अब आपसे फिर बात करूँगा।' उन सज्जनने उस समय पिण्ड छुड़ाया और मुझे भी इससे प्रसन्नता हुई; क्योंकि मुझे भी दर्शन करने मन्दिर जाना था।

× × ×

'मैया ! आज लालाके दर्शन नहीं करायेगी ?' उस दिन आनन्दीमाईके मन्दिरमें साढ़े ग्यारह बजेतक भी दर्शन खुले नहीं थे। श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शन करके

श्रीराधावल्लभजीकी झाँकी करते मैं प्रायः प्रतिदिन आनन्दीमाईके मन्दिर आया करता था। यह बात आज नवीन थी, इतनी देर तो कभी नहीं हुई थी। मन्दिरके पट खुले थे; किंतु पर्दा हटाया नहीं गया था। भीतर श्रीआनन्दीमाई होंगी, इस आशामें ही मैंने पुकारा था। मन्दिरमें वाहर कोई उस समय नहीं था, मैं एकाकी दर्शनार्थी पहुँचा था।

'लाला! यह राधा मुझे बिकवाकर रहेगी!' वृद्धा आनन्दीमाई पर्देसे वाहर निकलीं तो उनका आजका स्वरूप देखकर मैं चकित रह गया। उनका गौर मुख क्षोभसे तमतमाया था। नेत्रोंमें क्रोधके साथ दुःख था। रुई-जैसे श्वेत केश बिखरे हुए थे। 'यह आज साड़ी पहिनकर नहीं दे रही है। इतना समय हो गया। लाला भूखा है और यह राधा……।'

यहाँ यह बता दूँ कि श्रीआनन्दीमाई व्रजराजकुमार श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र मानती थीं और श्रीवृषभानु-नन्दिनीको पुत्रवधू। उनके मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णकी बड़ी सुन्दर मूर्ति है। पूजा नहीं—लाड़ लड़ाती थीं मैया उनका। व्रजवासी बालकोंसे मैयाका बहुत स्नेह था। प्रायः वे व्रजवासियोंके बालकोंको बुलाकर उन्हें भोजन कराती थीं तथा वस्त्रादि देकर उनका सत्कार करती थीं। वृन्दावन आनेके दो-तीन दिन बादसे ही मैं उनके मन्दिरमें दर्शन करने जाने लगा था। पता नहीं क्यों, मुझे भी वे एक व्रजवासी बालकके समान स्नेह करती थीं। वे भण्डार अथवा रसोईमें हों और मैं दर्शन करके चुपचाप चला जाऊँ

तो बात दूसरी, अन्यथा देखते ही प्रसन्नतासे खिलकर कहतीं—'लाला आया ! लाला आया !' और किनका प्रसाद दिये बिना खाली नहीं लौटने देती थीं ।

'मैया ! कैसी साड़ी है यह ?' उस दिन मैयाका क्षोभ देखकर मैंने पूछ लिया; क्योंकि मुझसे बोलते-बोलते उनके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े थे । वे बहुत व्याकुल थीं और समझ नहीं पाती थीं कि क्या करें ।

'देख लाला ! तू ही देख ले ।' पर्देके भीतर जाकर एक लाल रंगकी रेशमकी सुन्दर-सी साड़ी वे ले आयीं । साड़ीपर हल्का-सा जरीका काम किया था । मैं जानता था कि मुझे उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्नान करके, रेशमी वस्त्र पहिनकर ही मैया मन्दिरमें जाती थीं । मैं झुककर देख रहा था और वे कह रही थीं—'अभी कल ही ले आयी हूँ । यह बुरी है क्या ? वह राधा इसे पहनकर नहीं देती है ।'

'मैया, सच बता । इस साड़ीको लेनेमें तूने कंजूसी तो नहीं की है ?' अचानक ही मैं पूछ बैठा । मेरी यह धृष्टता थी; किंतु उन महनीयाके वात्सल्यने ही मुझे धृष्ट बना दिया था । एक बात और—उनका अद्‌भुत वात्सल्य देखते हुए यदि उनकी लायी साड़ी स्वीकार नहीं हो रही है तो यह कोई प्रेमका ही विवाद होगा, यह सहज अनुमान किया जा सकता था ।

'लाला ! मेरा अपना क्या है । इनके लिये ही तो मैं कुछ बचाना चाहती हूँ ।' उन वृद्धाके नेत्र इस बार उमड़ ही पड़े थे—'अब मेरे पास बहुत थोड़ी पूँजी रह

गयी है। साड़ी लेने गयी तो दूकानदारने कई साड़ियाँ दिखायीं, यह पच्चीस रुपयेकी है। एक दूसरी तैंतीस रुपयेकी थी।' वे सहसा चुप हो गयीं।

'सच बता, तुझे वह दूसरी साड़ी बहुत अच्छी लगी थी न?' मैंने पूछ लिया।

'वह थी तो बहुत अच्छी; किंतु यह भी तो बुरी नहीं है।' बड़ा सरल सहज स्वर था।

'लेकिन तेरी बहू अब इसे तो पहिननेसे रही।' मैं हँस पड़ा—'उसे तो वही साड़ी लेनी है, जो तुझे बहुत अच्छी लगी थी।'

'लाला! तब तू थोड़ी देर यहाँ बैठ!' अनुनय करनेके ढंगपर उन्होंने कहा; क्योंकि मन्दिरका पट खुला था और वहाँ दूसरा कोई था नहीं। इस प्रकार सूना मन्दिर छोड़कर वे बाजार जा भी कैसे सकती थीं। 'मैं हाल आती हूँ।'

जल्दी-जल्दी उस साड़ीको तहाकर उन्होंने कागजके डिब्बेमें रक्खा, अपनी पूजाकी साड़ी बदलकर साधारण वस्त्र पहिने और बाहर निकल गयीं।

× × ×

काश्मीरी ब्राह्मणोंका कोई परिवार अमृतसरमें बस गया था। उस परिवारको अपने जन्मसे इन्होंने धन्य बनाया है। किसीने मुझसे कहा है कि ये बाल-विधवा हैं। संतान हुई थी; किंतु रही नहीं। परिवारके लोग भी कालकवलित हो गये। खब सम्पन्न घराना था।

अपना सब कुछ बेचकर ये वृन्दावन आयीं तो इनके पास कई लाखकी सम्पत्ति थी। यह मन्दिर बनवाया और श्रीनन्दनन्दन को अपना पुत्र मानकर उसके लालन-लाड़नमें लग गयीं।

वह सम्पत्ति तो अबतक लगभग समाप्त हो चुकी है। मुझे यह भी पता नहीं कि बतानेवालेका विवरण कितने अंशोंमें ठीक था; किंतु एक बात प्रत्यक्ष है और वह यह कि वात्सल्यभावकी अगाध सम्पत्तिकी ये स्वामिनी हैं।

वार्धक्यके कारण किञ्चित् स्थूल शरीर, शुभ्र गौर वर्ण, श्वेत केश एवं अत्यन्त श्वेत वस्त्रोंमें उनका झुर्री पड़ा, बड़े-बड़े नेत्रों तथा विशाल भालवाला दिव्य वपु देखते ही 'मैया!' कहनेको अपने-आप चित्त समुत्सुक हो जाता है। वे मूर्तिमान् मातृत्व लगती हैं।

मैं उनके सम्बन्धमें ही यह सब सोच रहा था, इतनेमें ही वे लौट आयीं। बिना एक शब्द बोले कागजका डिब्बा लिये अपने निवास-कक्षमें चली गयीं। मुझे लगा कि उन्होंने शीघ्रतापूर्वक दो-चार लोटे जल शरीरपर डालकर स्नान किया है। मन्दिरमें जानेवाले वस्त्र बदले और मन्दिरमें चली गयीं। यह सब करनेमें कठिनाईसे पाँच मिनट लगे होंगे।

'देख लाला! अब इसने अपने-आप कैसे झटपट यह साड़ी पहिन ली है।' तीन-चार मिनटमें ही मन्दिरका पर्दा हटा दिया उन्होंने। आनन्दके आवेगसे उनका रोम-रोम प्रफुल्लित लग रहा था। नेत्र खिल उठे थे—'आज

कैसी सज गयी है यह ! '

मैंने दर्शन किया। सचमुच श्रीराधाका श्रीविग्रह बहुत सुसज्ज था आज। नयी साड़ी अत्यन्त कलात्मक ढंगसे पहिनी गयी थी। तीन-चार मिनटोंमें इतने अच्छे ढंगसे वस्त्र-सज्जा हो सकती है, सोचकर आश्चर्य होता है। मैया कह रही थीं—' तू नेक रुका रह। मैं झटपट भोग लगाती हूँ। आज नहीं प्रसाद लेना है तुझे।'

मैंने देखा नहीं था कि मन्दिरमें पर्देके पीछे क्या हुआ था ; किंतु श्रीआनन्दीमाईने यही तो कहा था— 'इसने अपने आप कैसे झटपट साड़ी पहिन ली है !' वहाँ भीतरसे ये दोनों श्रीविग्रह सजीव-साकार उठे हों, अद्भुत बात तो नहीं है। प्रतिमा भगवान्‌की मूर्ति नहीं है, वह अर्चावतार है, साक्षात् भगवान् हैं, यह बात उस दिन समझमें आयो। लेकिन अपने उन मित्रोंको क्या समझा पाऊँगा कि मेरे सम्मुख ही अर्चावतारने अपनी लीला प्रदर्शित की ? वे इसे समझ पायेंगे ?

भोले भगवान्

हरीश आज इस ज्येष्ठकी दोपहरीमें बहुत भटका, बहुत-से दफ्तरोंके द्वार खटखटाये उसने, अनेक समाचार-पत्रों और दूसरे कार्यालयोंमें पहुँचा; कितने दिनोंसे चल रहा है यह क्रम; कौन गिनने बैठा है इसे। विश्व-विद्यालयसे एम्० ए० करके अपने साथ अनेक प्रशंसा-पत्र लिये भटक रहा है हरीश। 'काम नहीं है।' उसके लिए! एक एम्० ए०के लिए क्या विश्वमें कहीं काम नहीं है? वह अकेला है, घरपर और कोई नहीं; घर ही नहीं उसके तो; पर पेट है न! अकेलेको भी तो भूख लगा करती है। दो-तीन दिन पहले एक कबाड़ीके हाथ वह अपना फाउन्टेन पेन मिट्टीके मोल बेच चुका और अब तो आज मुट्ठीभर चने लेनेमें ही उसकी अन्तिम पूँजी भी समाप्त हो गयी 'काम नहीं' लगभग सात-आठ महीने हो चुके, उसकी सभी प्रार्थनाओंका जो उसने इधर-उधर भेजीं, एक ही उत्तर। वह जहाँ जाता है, उसे द्वारपर दिखा दिया जाता है—'काम नहीं'। इतने बड़े संसारमें उसके लिए कहीं काम नहीं और अब कलके लिए कौड़ी भी पास नहीं है। 'काम नहीं'। इस ग्रीष्ममें, इस तवे-से तपते पथपर वह भटकता रहा और अब उसे लगता है कि सचमुच संसारमें उसका अब कोई काम नहीं है।

रूखे बिखरे बाल, तमतमाया फीका मुख, पसीनेसे लथपथ देह और भालपर चिपकी कुछ अलकें—शरीर

कहाँतक साथ दे किसीका। अब चक्कर आने लगा। पार्क दूर है और कुछ देर विश्राम चाहिये। इधर-उधर देखकर मन्दिरमें घुस गया हरीश। शीतल छाया, सुगन्धित वायु, जैसे प्राणोंको अद्‌भुत तृप्ति मिली हो, जगमोहनके सम्मुख धम्‌से एक खम्भेके पास बैठ गया। मन्दिरकी चिकनी शीतल संगमर्मरकी भूमि बड़ी सुखद लगी। वह खंभेके सहारे हो गया।

'कोई थका हुआ दीखता है!' पुजारीजीने केवल एक दृष्टि डाली और विश्राम करने चले गये। भगवान्‌का मध्याह्न-विश्राम हो रहा है। मन्दिरके गर्भगृहके पट बन्द हो चुके। जगमोहनमें आजकल ग्रीष्ममें कुछ श्रद्धालु दोपहरीमें यदाकदा आ जाते हैं। भगवान्‌का भवन सभीका गृह है न। दर्शनार्थी तो कबके जा चुके, पुजारीजी भी दो घण्टे तो विश्राम करेंगे ही।

हरीश—आज जगमोहनमें एकाकी, थका, खिन्न हरीश है। उसे क्या काम मन्दिरसे और क्या मूर्तिसे। वह तो थका है। बड़ी शीतलता, बड़ी सुगन्धि, बड़ी शान्ति मिल रही है उसे यहाँ। वह विश्राम कर रहा है। प्यास लगी है; कोई बात नहीं, अभी तो उठा नहीं जा सकता, मन्दिरके बाहर प्याऊ तो वह देख ही आया है।

पिता अच्छे वकील थे। परिमार्जित सुधारक विचार थे उनके। वकालत चलती थी। लेकिन मित्रोंका संग—कुछ रंगीन स्वभाव हो गया आगे चलकर। अच्छे साथी हों और बोतलकी रंगमयीसे अनुराग हो जाय तो फिर

रुपये क्या कभी जेबमें टिका करते हैं ? पैतृक सम्पत्ति तो वैसे ही नहीं थी। कहीं दूर ग्राममें घर है। पर हरीशने सुना ही है, देखा नहीं उसे। उसके पिता-माता नगरमें रहते थे। वहीं उसने जन्म लिया एक सुन्दर बँगलेमें, बड़े स्नेहसे पालन हुआ उसका और बड़े उत्साहसे शिक्षा प्रारम्भ हुई। अन्ततः माता-पिताकी एक ही तो सन्तान था वह !

कालेज और विश्वविद्यालयका वह जीवन—जेबमें कभी अभाव नहीं, प्रतिभा भी सम्पत्तिके समान प्रचुर ही हुई और तब स्वस्थ, सबल हरीश सहपाठियोंमें बड़ा अग्रणी तो रहेगी ही। 'धर्मकी मूर्खतापूर्ण धारणा और ईश्वरकी भूल-भुलैया' से तो उसके पिताजीने ही पिण्ड छुड़ा लिया था। माताजीमें कुछ बातें थीं, पर ऐसा कुछ नहीं। स्त्रियाँ कुछ भावुक होती ही हैं। हरीश तो छात्रोंमें अग्रणी रहा है। नियम, संयम, धर्म, ईश्वर—इन सबका उपहास करके इनकी दासतासे मुक्ति पा जाना ही तो गौरव है मनुष्यके लिये। हरीश अग्रणी ही रहा है इसमें और बूढ़े खूसट दकियानूस अफसरोंको चिढ़ानेमें कितना आनन्द आता था उसे।

सहसा पिताजीका हार्ट फेल हो गया। इतने बड़े वकील, पर पसलियोंके नीचे धुकपुक करता जो छोटा-सा हृदय है, वह तो किसीकी अपेक्षा नहीं करता। न्यायालयमें खड़े थे और वहीं···। हाँ, तो उसके पश्चात् समवेदना, शोकप्रकाश, समाचारपत्रोंमें संवाद—यह बड़ा दम्भी समाज है। सबने इतना तो ढोंग रचा और जब सहायता-

की बात आयी, किसीकी जेब ऐसी नहीं, जो खाली न हो। कुछने तो रूखा उत्तर दे दिया। अब तो ये सब पहचानते तक नहीं।

किसे पता था कि पिताजी इतना कर्ज कर गये हैं। वह सामान फर्नीचरतकका नीलाम, वह बँगलेसे निर्वासन! माता मर गयी इन सब आघातोंसे और हरीश—बेचारा हरीश बच रहा है। बच ही तो रहा है यह सब भोगने। कहाँ एम०ए० पास करनेके पश्चात्की वे पार्टियाँ, वे उत्साह और कहाँ····। पिताजी योजना बनाते ही रहे अपने होनहार पुत्रके सम्बन्धमें और उसी समय मरना था उन्हें।

पता नहीं कितनी बातें स्मरण आयीं। एकाकी रोने और हिचकनेका यह पहला दिन तो नहीं है। शरीरके वस्त्रतक बिक चुके। जो लोग बड़े आदरसे मिलते थे, वे अब पहचानते तक नहीं। आज सबसे प्रिय एकमात्र सम्पत्ति फाउन्टेनपेनको बेचे भी दो दिन हो चुके। उसका मूल्य भी अब तो उदरमें पहुँच चुका। फुटपाथपर या पार्कके कोनेमें सो लिया जा सकता है और यह तो अभ्यस्त बात हो गयी, पर भूख—पेट तो नहीं मानता। 'काम नहीं!' सब एक ही बात कहते हैं, सब कहीं एक ही उत्तर मिलता है और तब सचमुच संसारमें क्या काम है उसका।

'भगवान्' छिः! यह तो मूर्खोंकी कल्पना है। एम० ए० हरीश इसे मानने चले? पर पता नहीं क्यों यह 'भगवान्!' आज विचित्र अद्भुत रूपसे मनमें उठ

रहा है। जैसे प्राण पुकारते हों 'भगवान् !' तभी लगा कि कण्ठ सूख रहा है। देरसे प्यास लगी है। दोनों हाथ भूमिपर लगाकर वृद्धकी भाँति थका-सा उठा युवा हरीश। वह बाहर प्याऊपर आ गया।

× × ×

'भगवान्, मेरे इस सौदेमें लाभ होना ही चाहिये। मैं भलीभाँति पूजा करूँगा आपकी।' इन सेठजीको तो हरीश पहचानता है। ये तो व्यापारियोंमें अच्छे प्रतिष्ठित हैं। ये क्यों इस पत्थरकी मूर्तिके सामने इस प्रकार हाथ जोड़ रहे हैं ?

'प्रभो ! मेरा बच्चा आज दस दिनसे चारपाईपर है। एक ही लड़का है मेरे। उसे अच्छा कर दो। अच्छा कर दो उसे नाथ और मैं आपकी पूजा करूँगा।' ये वकील साहब—ये पढ़े-लिखे सुसभ्य ! क्या करें, एक ही लड़का और वह भी बीमार—बेचारेकी बुद्धि व्यवस्थित नहीं है इस समय। हरीश प्याऊसे जल पीकर फिर मन्दिरमें आ गया था। आज पहली बार वह एक मन्दिरमें आया था। पट खुल गये थे, लोग दर्शनोंको आ रहे थे। थका, क्लान्त हरीश—वह जल पीकर फिर भीतर लौट आया। कहीं जानेका उत्साह नहीं था उसमें। इतने लोग आ गये हैं, इतने लोग खड़े हैं, अब एक ओर बैठनेका अवकाश तो है नहीं, वह भी पीछे एक ओर खड़ा हो गया। कौतूहलपूर्वक देखने लगा। उसे दर्शन करने और प्रणामसे क्या काम; वह तो देख रहा था यहाँका कौतुक।

'भगवान् ! इस मुकदमेंमें मेरी लज्जा रख दो । मैं पाँच सेर लडडू चढ़ाऊँगा ।' मूर्ख कहींका– हरीशने मन-ही-मन उन बाबू साहबपर रुष्ट होते हुए कहा । लोगोंमें तो बड़ी बुद्धिमानी बघारते हैं और यहाँ इस पत्थरके सामने आये हैं गिड़गिड़ाने । वहाँ वकीलकी फीस जितनी दे डालते हैं, उतना भी यहाँ नहीं लगाना चाहते और पूरा मुकदमा जीत लेना चाहते हैं। पाँच सेर लडडू—बस, इतनी घूस पर्याप्त मान ली है इन्होंने ।

'भगवान् ! मैं ऐसी भूल फिर कभी नहीं करूँगा । अब सावधान रहूँगा । मेरी जान बचा दो इस बार ।' ये दारोगाजी हैं । कहीं किसी घातमें पकड़े गये जान पड़ते हैं । अब सावधान रहेंगे ये । दूसरोंका गला दबानेमें थोड़ी भूल हुई—अब सावधानीसे दबायेंगे, अब कोई जान नहीं सकेगा—यही तो ? इस बार बच जाना चाहिये और तब ये माला चढ़ा देंगे—सवा रुपयेका गजरा ! बड़ा बुरा लगा, बड़ा क्रोध आया हरीशको, पर वह चुप रहा ।

'मेरा यह काम कर दो । मैं तुम्हें लड्डू दूँगा, माला दूँगा, पूजा करूँगा' और कुछ तो यह भी नहीं करना चाहते । वे तो केवल कहते हैं—मेरा अमुक काम कर दो । सब आज्ञा देने आते हैं । सब ठगने आते हैं । उस सेठको सौदेमें लाभ हो या न हो, पर दलालको पूरी दलाली देगा वह । लाभका कोई पूरा भरोसा दे तो सौ-दो-सौ देनेको भी उद्यत हो जायगा, पर यहाँ वह पूजा कर देगा और सो भी पूरा लाभ पहले हो तब ! पूजा—दस पाँच रुपये लगा देगा पूजामें ।' हरीश सोचता जा रहा था ।

'वकील साहबने बच्चेकी औषधियों और डाक्टरोंकी फीसमें कितना व्यय किया, कौन जाने। अभी कोई लड़केको अच्छा करनेके विश्वासपर देन-लेनेकी बात करे तो हजार-पाँच सौ बड़ी बात नहीं और यहाँ वे कहते हैं—बच्चा अच्छा हो जाय तो पूजा करूँगा। पूजा-पथ्यका व्यय भी नहीं। वह भी अच्छा होनेपर। और डाक्टरसे इन्होंने कहातक न होगा कि फीस कल ले लीजियेगा।' हरीशके मनमें लोगोंकी स्वार्थपरताके प्रति विद्रोह जगने लगा और तब पता नहीं कहाँसे उसे उस पत्थरकी मूर्तिके प्रति मनमें सहानुभूति आ गयी। 'वे इस भोले भगवानको किस प्रकार ठगना चाहते हैं।'

हरीश सुनता रहा—सुनता रहा—'लोग केवल आज्ञा देने आते हैं। सब धूर्त हैं, सब स्वार्थी हैं, सब ठगने आते हैं इस भगवानको। 'मेरा यह काम कर दो। मनमें आता है कि एक थप्पड़ मार दे, लात मारकर निकाल दें मन्दिरसे बाहर! 'यह काम कर दो पूजा करूँगा। माला चढ़ाऊँगा।' धूर्त कहींके, सब निराश होकर, सारे उपाय करके तब आते हैं और सबसे सस्तेमें टरकाना चाहते हैं। वह क्यों उत्तेजित हो रहा है, क्यों क्षुब्ध है, क्या अपनत्व है उसका इस मन्दिर और भगवान्से—कुछ सोचता नहीं वह। सम्भवतः भूखे, सब कहींसे 'काम नहीं' का उत्तर एवं हरीशकी समाजके लोगोंके प्रति जो घृणा, जो उपेक्षा है वही इस रूपमें जाग्रत् हो गयी है।

'भगवान्, मेरे पास कुछ नहीं है! मैं यदि चार आना भी पा सकता तो दो आने तुमको दे देता। तुम

मेरा कोई काम मत करना—मैं और प्राप्त करूँगा। मैं अवश्य और प्रयत्न करूँगा और तुम्हें दो आने दूँगा। तुम मत करो इन धूर्तोंका काम। हरीश स्वयं नहीं समझ सका कि इस पत्थरकी मूर्तिके प्रति कैसे वह इतनी बातें कह सका। भूखा हरीश—उसकी क्षुधा, उसका समाजके प्रति रोष—वह उत्तेजनामें था। उसने अनुभव किया कि अब और यहाँ ठहरनेपर वह अपनेको रोके नहीं रह सकता। आगे बढ़कर लोगों के बीचसे वह मूर्तिके सामने आया, जो मुखमें आया, कहकर वैसे ही लोगोंको ठेलते निकल गया मन्दिरसे बाहर।

'बदमाश है!' लोगोंमें एक हल्की-सी उत्तेजना आयी हरीश जब ठेलकर आगे बढ़ा और ठेलकर ही निकल गया। कुछ लोग रुष्ट हुए मन्दिरमें यह धृष्टता देखकर।

'कोई पागल है!' दो क्षणमें ही लोग भूल गये। सब दर्शन करने और क्रमशः जाने लगे। भला कोई बिना मतलब कहाँतक दूसरोंको स्मरण रख सकता है। मन्दिरमें हरीश भी आया था, उस मन्दिरके पीठपर अधिष्ठित देवताको छोड़कर कौन इसे स्मरण रक्खे और क्या प्रयोजन इसका।

× × ×

'बाबूजी! तनिक यह तार पढ़ देंगे!' हरीशने घूमकर देखा। यही सेठजी तो हैं जो मन्दिरमें सौदेमें लाभका सौदा कर रहे थे भगवान्से। हाथमें कोई कागज लिये पुकार रहे हैं ये—'आपको कष्ट तो होगा।' सेठजीने

बड़ी नम्रतासे कहा।

'मैं बेगार नहीं किया करता!' हरीशको बहुत रोष है सेठजीपर। ये स्वयं तो इतने बड़े सौदेमें भगवान्‌को भी पूजापर टरकाना चाहते हैं और हरीश तार पढ़ दे—क्यों पढ़ दे? हरीश इतना अनुदार तो नहीं है, वह तो दूसरोंकी सेवा, उनके कामके लिये सदा प्रस्तुत रहा है; लेकिन आज वह रोषमें है, इन सेठजीपर तो बहुत रुष्ट है वह। 'आपको मुझसे तार पढ़ाना हो, तो चवन्नी निकालिये।'

'जरा-सा तार पढ़ना और चार आने!' सेठजीने युवककी ओर ध्यानसे घूरते हुए देखा। 'यह तमकता चेहरा, ये रूखे केश।' मुखसे कुछ न निकला सेठजीके। दूसरा समय होता तो वे कह देते—'आप कष्ट न करें। मैं और किसीसे पढ़वा लूँगा।' लेकिन भावकी सूचनाका समय है, क्या पता भगवान्‌ने सुन लिया हो। इधर-उधर कोई दीखता भी नहीं। बाजार जानेमें देर होगी। पता नहीं क्यों घरसे नौकर मार्गमें ही दे गया है तार उन्हें। जेबमें हाथ डाला उन्होंने—'आप रुष्ट न हों, यह रही चवन्नी।'

आश्चर्यसे हरीशने देखा सेठजीकी ओर। उसे इसकी आशा तो थी ही नहीं, पर उसका रोष शिथिल ही हुआ है तनिक, गया नहीं है। उसने चवन्नी निःसंकोचभावसे लेकर कमीजकी जेबमें डाल दी और तार सेठजीके हाथसे लेकर खंभेपरकी बिजलीके प्रकाशकी ओर झुक गया। तार पढ़कर उसने कागज लौटा दिया और इस प्रकार

चल पड़ा, जैसे सेठजीसे उसे कोई मतलब न हो। सेठजीको तो बाजार पहुँचनेकी शीघ्रता है। तारमें अनुकूल भाव आये हैं। इस समय चवन्नी तो क्या रुपयेकी भी चिन्ता न होती उन्हें।

× × ×

'चवन्नी-- इतनी शीघ्र, इतनी सरलतासे यह चवन्नी मिली है।' चवन्नीका मूल्य आज हरीशकी दृष्टिमें जो है, वह दूसरा कैसे समझ सकता है। 'दो आने मन्दिरके उस भगवान्को देने हैं। कितना भोला है वह भगवान भी। सब उसे ठगनेको ही पहुँचते हैं।' हरीश चाहे जितना कंगाल हो गया हो, उसका हृदय कभी विश्वासघाती नहीं होगा। वह बेईमानी नहीं करेगा। दो आने भगवान्को देगा। उसके लिये तो दो आने आज पेटकी भूख मिटा देने भरको हैं ही। मन्दिरकी ओर मुड़ा वह।

'मन्दिर बंद हो गया ! पुजारीने द्वार बंद कर दिये मन्दिरके ?' हरीशने बंद द्वारके सम्मुख खड़े होकर भी अपने-आपसे ही पूछा। 'अब तो यह कल खुलेगा ! क्या चिन्ता, कल सही। मैं कल दो आने यहाँके भगवान्को दे जाऊँगा। अभी तो भूख लगी है।'

'इसमें दो आने दूसरेके हैं, मैं उसका भाग दिये बिना अपना भाग ले लूँ—बेईमानी तो न होगी ? मैं अपना ही भाग तो ले रहा हूँ ! बँटवारा तो हुआ नहीं; अपना भाग कहाँसे आया ?' दो आनेके चने ही तो लिये जा सकते हैं। बेचारा हरीश चनेकी दूकानके सम्मुख खड़ा

भी हुआ और लौट आया। मन्दिरके बाहर ही जल पीकर भूखा ही लेट गया वह भूमिपर। 'आज न सही, कल तो चने मिल ही जायँगे। चवन्नी अपने पास है ही।'

'मन्दिरमें वह पत्थरकी मूर्ति, क्या उपयोग उसके लिये पैसेका? उसे ये लोग 'भगवान्' कहते हैं—माला, चन्दन, वस्त्र, पक्वान्न—पदार्थोंका कितना दुरुपयोग है। कहाँ तो झोपड़ियोंमें, सड़कोंपर गरीब दाने-दानेको तरसते हैं और कहाँ एक पत्थरके पीछे यह पदार्थोंको—धनको नष्ट किया जाता है। पत्थरकी मूर्ति—उसे चन्दन लगाया तो, न लगाया तो; किंतु इन पंडे-पुजारियोंकी तोंद कैसे भरे।' हरीशकी भावुकता चली गयी थी। उसकी बुद्धि जाग गयी थी। उसे लोगोंकी मूर्खता और पुजारी-पंडोंके दम्भपर क्रोध आ रहा था।

'मैं भी कितना मूर्ख हूँ। चवन्नी मुझे मिली है, मेरी है। उस मूर्तिको क्या करना है पैसेका। पुजारीको मैं और दो आने देने चला हूँ।' वह सोचने लगा कि क्यों न उठें, दो आनेसे अपनी भूख शान्त कर लें और शेष दो आने कलके लिये बचा लें; पर शरीर बहुत थक गया है। मन क्लान्त हो गया है। उठनेकी बात सोचकर भी उठा नहीं जाता।

'मैंने दो आना देनेको कहा है। वह मूर्ति सही, पर मैंने उसीको तो देनेको कहा है। दो आनेके लिये बेईमानी करूँ मैं, छिः! उसका उपयोग हो या न हो; मैंने कहा है न!' हरीशने सोच लिया कि वह दो आने तो मूर्तिको—

उस भगवान्को देगा ही। पुजारीको नहीं देगा; किसी प्रकार नहीं देगा पुजारीको। दो आनेके फूलोंकी माला लेगा और उससे मूर्ति और सुन्दर दीखेगी।

कब पलकें बंद हुईं, कब सो गया हरीश, यह तो उसको पता न लगा, तब मुझे क्या पता हो।

× × ×

'भगवान्, आपने मेरी विनयपर ध्यान नहीं दिया। आप तो दयामय हैं। प्रभो! आजका सौदा…………।' सेठजी मन्दिरमें दोनों समय आते हैं। द्वारपर हरीशको देखते ही पहचान लिया उन्होंने! हरीशने भी आज नम्रतासे उनके 'जय रामजी' का उत्तर दिया और फूट लिया। सेठजीको पर्याप्त लाभ हुआ है, ऐसे सौदोंमें लाभ हुआ है, जिनमें लाभकी आशा छोड़ चुके थे वे, पर उस सौदेमें कहाँ लाभ हुआ, जिसके लिये प्रार्थना कर गये थे वे भगवान्से। उस सौदेमें तो उन्हें कुछ थोड़ी हानि ही रही है। तभी तो वे यह दो पैसेवाली माला लिए आये हैं मन्दिरमें। दूसरे सौदोंमें लाभ हुआ—यह तो कोई बात नहीं, वह तो हो गया। भगवान्ने उनके बताये सौदेमें क्यों लाभ नहीं कराया? कैसे पूजा करें वे।'

'भगवान्! मेरा बच्चा रातको कुछ ठीक रहा है। आप दया करें उस बालक पर। आज मैंने बड़े वैद्यजीको बुलाया है, बस, उनकी औषधिसे जरूर लाभ हो जाय।' लाभ होना चाहिये और वह भी अब बड़े वैद्यजीकी औषधिसे। पूजा—पूजा तो लड़का पूरी तरह अच्छा हो जायगा तब

न ? अभी तो वह कुछ ठीक रहा है।

'भगवान्......?' हरीश देखता रहा चुपचाप। बाबू साहब, दारोगाजी, कलके अनेक लोग आये और चले गये। किसीको थोड़ा लाभ हुआ, किसीको बताये स्थानमें लाभ नहीं हुआ, किसी और स्थानमें हुआ तो उसे वह क्यों गिने। कोई आया है स्मरण कराने कि उसका काम भूल न जाय और कुछ लोग दोनोंमें पूजा लाये हैं। 'भगवान' इस बार हाथ संकटमें हैं। काम हो जानेपर वे अब आर्थिक कष्टका अनुभव करने लगे हैं। आगे कभी दूसरा काम पड़ेगा तब यह कमी पूरी कर देना चाहते हैं वे।

'आपने इतना प्रसाद तो रख लिया। ऐसा तो और किसी मन्दिरमें नहीं होता।' ये सज्जन झगड़ रहे हैं पुजारीसे। पुजारीका कहना है कि आधा प्रसाद रख लेने-का अधिकार है उसे। यह समझौता कैसे हुआ; हरीशको इसे देखनेका अवकाश नहीं। वह अपनी भावनाओंमें मग्न है।

'भगवान् मेरा काम कर दो!' इतने लोग आते हैं, इनका काम होता है—मूर्ख तो नहीं है ये सब। अभी चार आने तो जेबमें हैं उसीकी। कितनी अकल्पित रीतिसे मिले ये चार आने। तब यह भगवान हैं, कुछ करते तो हैं। हरीशने मूर्तिकी ओर देखा, एकटक देखता रहा।

'बड़े भोले हैं ये भगवान्! लोग ठगते ही रहते हैं इन्हें। सब आते हैं—आज्ञा देते हैं और चाहते हैं कि उनका

बताया कार्य, उन्हींकी बतायी रीतिसे और उन्हींके बताये समयपर पूरा हो जाय। इतनेपर भी कम-से-कम पारिश्रमिक देना चाहते हैं। काम हो जानेपर बहानेबाजी और यह प्रसादका झगड़ा········।' हरीशको बहुत बुरा लग रहा था यह दम्भ लोगोंका।

'क्यों करते हो तुम यह सब'?' जैसे वह भगवान्से ही पूछ रहा हो? 'अच्छे वस्त्र, सुन्दर मालाएँ, चन्दन, धूप, आरती—यह सब कहाँसे आवे? अपनी आदत बिगड़ गयी। इस सबके बिना रहा नहीं जाता और स्वयं कहीं जा नहीं पाते। दूसरोंके द्वारा ही तो यह सब मिलता है। हरीशने अपने-आप ही सब सोच लिया और तब उसे भगवान्की विवशतापर बहुत दया आयी। हरीशको कौन बतलाता वहाँ कि मन्दिरके ये भोले दयामय देवता अपने सम्मुख आये आर्तजनोंके भाव ही देखते हैं। पदार्थोंका इनकी दृष्टिमें क्या मूल्य। इन पूर्णकामको प्रयोजन क्या लोगोंके पदार्थोंका। ये भावमय हैं—लेकिन हरीश कहाँ धर्मशास्त्री है कि यह सब सोचे—

'मैं करूँगा! मैं दूँगा तुम्हें यह सब। मत करो तुम इन धूर्तोंका कोई काम! मेरा कोई काम नहीं। कोई काम मत करना तुम मेरा। मैं तुम्हें दूँगा यह सब?' हरीश अपने आवेशमें भूल ही गया कि वह कैसे देगा यह सब। उसे अपना ही पेट भरनेको कुछ नहीं मिल रहा है। वह तो बाहर गया और पूरी चवन्नीका गजरा ले आया। भूल गया वह कि उसमें एक दुअन्नी उसकी है और वह कलसे भूखा है। जब पुजारीने उसकी वह सुन्दर माला

भगवान्‌के कण्ठमें उठाकर डाल दी, जैसे मूर्ति मुसकरा उठी हो। हरीशको लगा, भगवान्—भोले भगवान् प्रसन्नतासे खिल उठे हैं और उनकी शोभा बढ़ गयी है।

'बाबू, प्रसाद लेते जाइये!' जिसने इतना सुन्दर हार चढ़ाया भगवान्‌को, उसे पुजारीजी मन्दिरसे जाते समय प्रसाद तो देंगे ही। लेकिन आश्चर्यसे देखते ही रह गये वे—'कैसा है यह युवक? न भगवान्‌को प्रणाम, न आदरका कोई भाव और कहता है कि मुझे कुछ लेना नहीं है।' पुजारीजी देखते रहे और हरीश बाहर निकल गया मन्दिरके। उसने देखा ही नहीं मुड़कर पुजारीजीकी ओर।

× × ×

भगवान्‌की कृपासे नगरके सरकारी कालेजमें हरीश-को प्रोफेसरी मिल गयी। लोग कहते हैं कि हरीशचन्द एम्० ए०—जैसा सुयोग्य प्रोफेसर यहाँके कालेजको सौभाग्यसे ही मिला है। उनके समान श्रमशीलता, वैसी प्रतिभा कठिनतासे ही मिलती है; किंतु हैं बड़ा लोभी और मक्खीचूस आदमी। रात-राततक ट्यूशन करता फिरता है और शरीरपर देखो तो वही फटी कमीज और फटी धोती। कालेजमें लड़कोंके चिढ़ाने और अधिकारियोंके हँसी करनेका भी कोई प्रभाव नहीं उसपर। दिन-रात

रुपया-रुपया, कोई है भी तो नहीं। क्या करेगा इन रुपयों-का। लेकिन मन्दिरके पुजारीजीको आश्चर्य है कि ये बाबू साहब इतनी मूल्यवान् सामग्रियाँ नित्य कहाँसे जुटा पाते हैं और इतनी श्रद्धा होनेपर भी ये प्रसाद क्यों नहीं लेते। कौन समाधान करे इसका। मन्दिरके वे भोले भगवान् कब किसका चित्त धीरेसे कैसे चुरा लेते हैं—कौन कह सकता है?

नामका मोह

'मुझे कोई आराधना बताइये ! कोई भी अनुष्ठान बता दीजिये। मैं कठिन-से-कठिन अनुष्ठान भी कर लूँगा। महेश आज एक संतके पैर पकड़कर बैठ गया था।

आस-पासके लोग कहते हैं कि मुनीश्वर महाराज सिद्ध संत हैं। वे जिसे जो बात कह देते हैं, वही हो जाती है। किसीको वे सीधे तो आशीर्वाद देते नहीं, कोई पूजा, कोई पाठ, कोई अनुष्ठान बता देते हैं। लेकिन जिसे वे कुछ बता देते हैं, वह ठीक-ठीक उनकी आज्ञाका पालन करे तो उसका काम हो जाता है।

संसार तो है ही दुःख और अभावका घर। किसीको कोई असाध्य रोग है, किसीको मुकदमा जीतना है, किसी-के संतान नहीं, किसीकी संतान या घरके लोग अच्छा व्यवहार नहीं करते। एक-न-एक दुःख सबको लगा है। मुनीश्वर महाराजके पास भीड़ लगी रहती है। साधुका हृदय कोमल होता है। वैसे तो वे प्रायः कह देते हैं— 'भैया, भगवान्से प्रार्थना करो। वे मङ्गलमय जो करते हैं, जीवका उसीमें मङ्गल है।' लेकिन कभी-कभी किसीको बहुत आर्त देखकर कोई पूजा-पाठ बता भी देते हैं।

महेश बहुत बार आया है। उसके आनेका एक ही उद्देश्य है; किंतु अपनी बात वह सबके सामने कहना नहीं चाहता। उसे एकान्त चाहिये और एकान्त उसे मिलता नहीं था। आज सौभाग्यसे कोई दर्शनार्थी नहीं है। दो-ढाई घंटेकी प्रतीक्षाके बाद उसे एकान्त मिला है। वह

संतके पैर पकड़कर बैठ गया है। अब तो वह अपनी बात पूरी होनेपर ही उठेगा।

महेश अभी युवक है। कालेजमें पढ़ता है। कुछ कविता कर लेता है। उसके कालेजमें कई युवक अच्छी कविता कर लेते हैं। उसके एक सहपाठीकी कविता कई पत्र सजाकर छापते हैं। अच्छे मोटे रंगीन विशेषाङ्कोंमें अपने सहपाठीकी कविता देखकर उसके मनमें क्या-क्या आता है—आप समझ सकेंगे ?

कई महीने हो गये, पर महेशको तो कल-जैसी बात लगती है, कालेजमें कवि-सम्मेलन हुआ था। अनेक विद्यार्थियोंने अपनी-अपनी कविताएँ पढ़ीं। कईके कविता-पाठपर लोगोंने तालियाँ बजायीं। उसके सहपाठीकी कविता लोगोंने आग्रह करके तीन बार सुनी। उसने भी कविता पढ़नेवालोंमें अपना नाम दे दिया था। उसका नाम भी पुकारा गया। उसने भी अपनी कविता सुनायी। लोगों-में समझ तो है ही नहीं, वे केवल सुरीले स्वरपर रीझते हैं। उसका स्वर सुरीला नहीं तो वह क्या करे। उसकी कविताका महत्व उसके सहपाठी समझते ही नहीं। मूर्ख है वे सब।' उस दिन जो उसका उपहास हुआ, उसमें उसने अपने मनको यों संतोष दे लिया।

महेश कबतक अपनेको धोखेमें रख सकता है। उसके साथी अबतक उसे 'कविजी' कहकर चिढ़ाते हैं। उसने सोचा था कि कविता किसी पत्रमें छप जाय तो साथियोंका चिढ़ाना बंद हो जाय। चुपचाप कई पत्रोंके लिये उसने रचनाएँ भेजीं। पत्रोंके सम्पादक उसे मिल जाते तो वह

उनकी नाक नोच लेता। उन पत्रोंमें जो रचनाएँ निकलती हैं, वे क्या सभी उसकी रचनासे श्रेष्ठ हैं। उसकी रचना-यदि सुधारकर कोई छाप देता तो क्या बिगड़ जाता उसका। पक्षपात—उसे लगता है कि सब पक्षपात करते हैं। सब पत्र-सम्पादक उसके विरुद्ध कोई अभिसन्धि किये बैठे हैं। उसीकी रचनाएँ क्यों सब कहींसे लौट आती हैं।

ये रंगीन आवरण-पृष्ठके मोटे, बड़े सुन्दर विशेषाङ्क, ये सजे-सजाये मासिक और साप्ताहिक पत्र—इनमें उसकी दो पंक्ति कहीं छप नहीं सकतीं ? आप महेशकी प्रशंसा कर सकते हैं। उसने कभी यह विचार नहीं किया कि दूसरेकी रचना कुछ उलट-पलटकर या वैसे ही अपने नामसे वह भेज दे।

कवि-सम्मेलनोंमें तो वह अब जाता ही नहीं। उसे कवि-सम्मेलनोंके नामसे चिढ़ हो गयी है। 'वहाँ कितने कविता समझनेवाले आते हैं ?'

'मैं दिखा दूँगा ! ये पत्र मुझसे अनुनय-विनय करके कविता माँगेंगे और उसे अपने मुखपृष्ठपर छापेंगे।' आप इस महत्त्वकांक्षाका उपहास नहीं कर सकते। अन्ततः जिनकी रचनाएँ मुखपृष्ठपर छपती हैं, वे भी तो मनुष्य ही हैं। जो काम एक मनुष्य कर सकता है, वही दूसरा क्यों नहीं कर सकेगा ?

'ये कवि-सम्मेलनोंके आयोजक मेरे पीछे हाथ जोड़ते घूमेंगे कि मैं उनके सम्मेलनकी अध्यक्षता स्वीकार करके उन्हें गौरवान्वित करूँ।' महेश धुनका पक्का है और उसकी धुन ही है, जिसने उसके हृदयमें एक दिनके

तनिकसे उपहासको इतना भारी रूप दे रक्खा है।

'महाकवि कालिदास मूर्ख थे—वज्रमूर्ख थे।' महेशको एक आश्वासन मिल गया है। वह भी आराधना करेगा। वह भी दैवी शक्ति प्राप्त करेगा।

'महाराज ! मैं यश चाहता हूँ। मैं कविता करनेकी ऐसी शक्ति चाहता हूँ कि सारा संसार मेरी रचनाओंकी प्रशंसा करे। मेरी रचनाएँ पूरे विश्वमें आदर पावें।' भावके आवेशमें युवक महेश संतके चरण पकड़े बोलता जा रहा है।

× × ×

'वहाँ एक कुआँ है। देखा है तुमने उसे ?' ये साधु-लोग भी विचित्र खोपड़ीके होते हैं। इनसे पूछो दालमें नमक तो बतायेंगे हलवेमें चीनी। मुनीश्वर महाराज भी तो साधु ही हैं। वे सीधे बात कर कैसे सकते हैं।

'वह बुढ़ियावाला कुआँ ही न ? महाराज ! मैं तो उसके आस-पास बचपनसे खेलता रहा हूँ। आपके लिये वहाँसे जल लाऊँ ?' महेश उठने लगा जल लानेके लिये।

'जल नहीं लाना है। बैठो तुम। उस कुएँपर एक नामका पत्थर लगा है। मुनीश्वर महाराजको तो कुएँकी चर्चा करनी थी।

'उस पत्थरपर बुढ़ियाका नाम लिखा है। यह कुआँ उसीने बनवाया है।' महेशने बताया।

'क्या नाम था बुढ़ियाका ?' साधुने पूछा—'मैंने सुना है कि बेचारीने पैसा-पैसा करके जो कुछ जुटाया था, उसीसे

यह कुआं उसने बनवाया। उसकी इतनी ही इच्छा थी, कि नाम रह जाय।'

'नाम तो मैंने कभी पढ़ा नहीं ध्यानसे।' महेश कुछ संकुचित हुआ। जिस कुएँके आस-पास वह बचपनसे खेलते रहनेकी बात कहता है, उसपर लगे पत्थरमें क्या नाम लिखा है, यह वह जानता ही नहीं। लेकिन इसमें महेशका क्या दोष है। हम आप कहाँ स्मरण रखते हैं कि हमारे कमरेकी छतमें कितनी कड़ियाँ हैं। मनुष्यके पास अपना ही क्या कम काम है कि वह बहुत-सी ऊल-जलूल बातें स्मरण रखे।

'काशीके पास एक पिसनहरिया तालाब है। किसी बेचारी स्त्रीने दूसरोंका आटा पीस-पीसकर जो कुछ इकट्ठा किया, उससे वह तालाब बनवाया।' साधुने कुछ खिन्न-सी मुद्रामें कहा—'जनता सदा अकृतज्ञ होती है। लोग अपना वर्तमान स्वार्थ ही देखते हैं। कोई नामतक नहीं जानता कि वह तालाब बनानेवाली उदार स्त्री कौन थी।'

'मैं उस कुएँपर लगे पत्थरको अब देख लूँगा और बुढ़ियाका नाम स्मरण रखूँगा।' महेशको लगा कि साधुको उसकी यह बात रुची नहीं कि उसने उस पत्थरपर लिखा नाम नहीं पढ़ा। वैसे उसका मन तर्क कर रहा है—'उस नामको पढ़ने और स्मरण रखनेके व्यर्थ कार्यसे लाभ ? इससे तुम्हारा तो कोई लाभ है नहीं और बुढ़िया तो मर गयी। अब कोई उसका नाम स्मरण रक्खे या न रक्खे। बुढ़ियाकी अब इससे कोई लाभ-हानि तो है

नहीं।' लेकिन इन मुनीश्वर महाराजको प्रसन्न करनेमें महेशका तात्कालिक लाभ है और यदि ये उस पत्थरपर लिखा नाम रट लेनेसे प्रसन्न होते हैं तो इस नन्हे-से कामको वह क्यों नहीं करेगा।

'नामकी इच्छा वैसे तो बड़ी पवित्र इच्छा है।' साधु महाराज अपनी धुनमें लगे थे। उन्हें इसकी चिन्ता नहीं जान पड़ती थी कि महेश उस कुआँ बनानेवाली बुढ़ियाका नाम रटेगा या नहीं। वे कह रहे थे—जैसे अपने आपसे ही कह रहे हों—'वासनाओंमें तो यह अच्छी ही है। यश होता है त्याग, सेवा और धर्मसे। यशकी इच्छा करनेवाला अधर्मसे प्रायः बचता है। यश धर्मका अनुगामी है।'

'महाराज! मैं यश ही चाहता हूँ।' महेश उकता रहा था। उसे लगता था कि कोई दर्शनार्थी जायगा और आज भी उसकी बात अधूरी रह जायगी। अवसर मिलते ही वह अपनी मुख्य बातपर आ गया—'मैं धर्म करनेको तैयार हूँ। आप आज्ञा करें, मुझे क्या करना होगा?'

'बाबा! बाबा!' महेशकी बात अधूरी रह गयी। पासके अमरूदके बगीचेके मालीका ढाई-तीन वर्षका नंग-धड़ंग बालक दोनों हाथोंसे एक पन्ना कागज पकड़े बड़े उत्साहसे लद्बद् दौड़ता आ रहा है। मुनीश्वर महाराज बच्चेको प्रायः प्रसाद देते हैं, उससे स्नेह करते हैं। बालकको सम्भवतः इसीसे लोग भगवान्‌का स्वरूप कहते हैं कि वह नहीं जानता किसीकी पद-मर्यादा, नहीं

जानता तड़क-भड़क, नहीं जानता धन-वैभव और नहीं जानता बल, विद्या या रूप। वह तो केवल प्रेम जानता है। वह प्रेमका पुतला, प्रेमका प्यासा है। वह दौड़ता आया और साधुके आगे उसने भूमिमें अपना कागज रखकर हँसते-हँसते कहा—'बाबा! पोथी!'

'अच्छा! तू बड़ा पण्डित हो गया है। तूने बड़ी पोथी लिख ली है।' साधुने बच्चेकी पीठ ठोंकी। उसके कागजको सिर झुकाकर बड़े आडम्बरसे देखा।

'मेरी पोथी अच्छी है। भैयाकी पोथी नहीं अच्छी।' बालक बार-बार अपने कागजको देखता है, उसपर हाथ रखता है, अँगुली फिराता है। अपने बड़े भाईकी स्याहीकी दावातमें अँगुली डुबा-डुबाकर उसने इस कागजपर टेढ़ी-मेढ़ी बहुत-सी मोटी-मोटी उलझी रेखाएँ खींच दी हैं। क्या हुआ कि उसका भैया चौथी कक्षामें पढ़ता है। भैयाकी पोथी भला उसकी पोथीकी तुलना कैसे कर सकती है?

'तुम्हारी पोथी सबसे अच्छी है।' संतने बालकको उत्साहित किया—'इन बाबूको दिखा दो अपनी पोथी।'

'पोथी!' बालक महेशकी ओर घूमकर खड़ा हो गया। एक अपरिचितके पास वह जाय या नहीं? यह बाबू उसकी पोथी ले तो नहीं लेगा? पास नहीं आया वह।

'तुम्हारी पोथी अच्छी है। अपनी माताके पास ले जाकर रख दो, नहीं तो खो जायगी।' महेश चाहता है कि किसी प्रकार बालक यहाँसे टले तो वह अनुष्ठान पूछ ले।

'पोथी !' बालक साधुकी ओर मुड़ पड़ा। बच्चा यह बड़ी सरलतासे समझ लेता है कि किसके स्वरमें स्नेह है और किसमें उपेक्षा है।

'तुम्हारी ही पोथी सबसे अच्छी है। साधुने बालकके सिरपर हाथ फेरा— 'बाकी सब पोथीवाले तो अपनी पोथीमें ही रहते हैं।'

बालकको प्रसाद मिल गया। अपनी वह एक पन्नेकी पोथी लिये उछलता, दौड़ता चला गया। लेकिन महेश चौंक गया—'यह पोथीमें चिपकनेवाली बात कैसी ?'

(३)

'तुम पुनर्जन्म मानते हो ?' मुनीश्वर महाराजने एक नया ही प्रश्न पूछ लिया।

'जी !' महेश डरा कि कहीं उससे यह न कहा जाय कि वह दूसरे जन्ममें कवि हो जायगा। वह तो कवि नहीं, महाकवि बनना चाहता है ओर अभी इसी जन्ममें।

'तनिक वह पुस्तक उठा लाओ !' कुल तीन-चार ही पुस्तकें तो इस स्थानमें हैं। मुनीश्वर महाराज संग्रही नहीं हैं। उनके पास तो केवल एक नन्ही-सी गीताकी पुस्तक रहती है। ये पुस्तकें भी किसी दर्शनार्थीकी हैं। वह सबेरे इन्हें यहाँ लेकर आया था। पुस्तकें यहीं छोड़कर दोपहरीमें पासके गाँवमें चला गया है। भोजनकी कोई व्यवस्था यहाँ तो है नहीं। मुनीश्वर महाराजके लिये भी गाँवमेंसे ही कभी कोई और कभी कोई भोजन

ले आता है। दर्शन करने जो लोग आते हैं, वे गाँवमें जो एक हलवाईकी दूकान है, वहीं कुछ बनवाकर खा लेते हैं।

'मर गया बेचारा!' महेशने पुस्तक दी। साधुने उसे खोला और एक पन्नेपर दृष्टि गड़ाकर इस प्रकार झुक गये, जैसे कोई बहुत बड़ी दुर्घटना देख रहे हों।

'यह तो पुस्तकोंको नष्ट करनेवाला कीड़ा है। महेश उत्सुकतावश समीप आ गया था। उसने झुककर पुस्तकका वह पृष्ठ देखा। वह एक किताबी-कीड़ा मरा चिपका था। 'ये वैसे तो ग्रंथोंको काट-काटकर नष्ट करते ही हैं, मरकर भी ग्रन्थको गंदा करते हैं।' महेशको इन कीड़ोंसे बहुत चिढ़ है। इन्होंने उसकी कई उत्तम पुस्तकोंके पन्ने जहाँ-तहाँसे खा लिये। उसका बस चले तो कवि बननेका यत्न पीछे करे, पहले इन कीड़ोंके वंशको नष्ट कर डाले।

'तुम इसे नहीं पहचानते। पहचान भी नहीं सकते।' संतने उसी खेदकी मुद्रासे कहा—'यह तो इस ग्रन्थका रचयिता है।'

'इस ग्रंथका—इस प्रख्यात महाकाव्यका रचयिता महाकवि ····················।' महेशके नेत्र फैल गये।

'बड़ा प्रतिभाशाली था। बड़ा विख्यात कवि था। बड़ा सम्मान पाया इसने। इसका यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ—बड़ी ममता थी इसकी इस ग्रन्थसे।' साधु ऐसे स्वरमें कह रहे थे, जैसे मृत कीड़ेके प्रति आन्तरिक समवेदना प्रकट कर रहे हों—'बेचारा अपने ग्रन्थमें भी नहीं रह

सका। यह तो कर्मका भोग है। कर्म समाप्त हुए और शरीर समाप्त हुआ। कोई कबतक किससे ममता किये रहेगा।'

'महाकवि··· ··· ···और यह कीड़ा!' महेशका मन अभी स्वस्थ नहीं हो सका है।

'इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। अपने कर्मके अनुसार, अपनी आसक्तिके अनुसार ही तो प्राणीका पुनर्जन्म होता है। वैसे तो ज्ञान नित्य एवं अनन्त है। अभी जो बालक आया था, उसकी पोथीके समान ही कुछ रेखाएँ, कुछ शब्द, कुछ अक्षर जोड़-बटोरकर यह महाकवि हो गया। लोगोंने कहा, इसने मान लिया मैं महाकवि हूँ। अपने ग्रन्थसे इसका मोह हो गया।' संत समवेदनाके स्वरमें ही कह रहे थे—'अब तुम कहते हो यह ग्रन्थ-कीट ग्रन्थको नष्ट कर रहा था। कोई इस ग्रन्थको, इस ग्रन्थके रचयिताको क्या कहता है, कितनी प्रशंसा करता है उनकी, इस बातसे इसको क्या लाभ? इसका पेट तो ग्रन्थके थोड़े-से बहुत थोड़े कागजसे भर जाता था। किसी ग्रन्थके कागजसे भर जाता; लेकिन मर गया बेचारा। उसके अपने ग्रंथने ही दबाकर मार दिया इसे।'

'यह कीड़ा था महाकवि········?' महेशको कैसे झटपट संतोष हो जाय।

'तुम पुनर्जन्म मानते हो, फिर चौंकते क्यों हो?' साधुने अब बड़ी स्थिर गम्भीर दृष्टिसे महेशको देखा। तुम पहले जन्मोंमें कालिदास, भवभूति या कोई दूसरे

महान् कवि, महान् शूर, चक्रवर्ती सम्राट नहीं रहे हो, यह कैसे जानते हो ? उस समयके तुम्हारे कर्म विश्वमें अब भी प्रख्यात हों तो तुम्हें उससे क्या लाभ ? अगले जन्ममें तुम क्या बनोगे, यह तो तुम्हारे इस जन्मके कर्मोंपर निर्भर है । यह तुम्हें स्वयं निर्णय करना है ।'

महेशने चुपचाप संतके चरणोंमें सिर रख दिया । उसे अब कोई अनुष्ठान नहीं चाहिये ।

(४)

'लाओ मुह मीठा करो !' यह क्या परिहास है ? परीक्षाका फल तो पहले ही ज्ञात हो गया है । अब यह महेशका मित्र उससे किस बातका पुरस्कार चाहता है ?

'तुम गुरुघंटाल हो ! मुझसे भी तुमने नहीं बताया कि सचमुच तुम अच्छे कवि हो गये हो ।' मित्रने उलाहना दिया ।

'मैं और कवि ?' महेश कुछ समझ नहीं पाता । आज पता नहीं ये सब उसे चिढ़ानेकी कौन-सी भूमिका बना रहे हैं ।

'बनो मत ! यह क्या है ?' एक पत्रिकाका विशेषाङ्क खोलकर मित्रने महेशके आगे कर दिया । महेशने एक कविता पहले इस पत्रिकाको भेजी थी । कविता लौटकर नहीं आयी थी परंतु सभी पत्र अस्वीकृत रचनाएँ लौटा ही तो नही देते । महेशको इसमें संदेह नहीं था कि उसकी रचना अस्वीकृतके ढेरमें पड़ी होगी । लेकिन वह तो

छपी है – विशेषाङ्कमें छपी है और मुख-पृष्ठपर न सही ; किंतु कालेजके अपने प्रतिद्वन्द्वी सहपाठीकी रचनासे पहलेके ही पृष्ठोंमें छपी है।

'मुझे ग्रन्थका घृणित कीड़ा नहीं बनना है।' महेशके मित्र उसका मुँह देखते रह गये। उसने पत्रिकाका अपनी कवितावाला पृष्ठ फाड़कर फेंक दिया। पत्रिकाके सब अङ्कोंसे वह पृष्ठ वह फाड़कर नहीं फेंक सकता – इस क्षोभमें उसने अपनी कविताकी कापी निकाली और उसके चिथड़े कर फेंके।

'तुम पागल हो गये महेश ?' मित्रोंको लगा कि अपनी कविताका पहला प्रकाशन महेशको इतना अधिक प्रसन्नताका कारण हुआ कि उसका मस्तिष्क उसे सह नहीं सका। वह पागल हो गया है।

'उस बालककी टेढ़ी-मेढ़ी लकीरोंमें और इन लकीरोंमें चाहे जितना अन्तर हो ; किंतु अपनी लकीरोंकी प्रशंसा सुनकर फूल जानेमें कौन-सी विचारशीलता है ? क्या हानि-लाभ है इसमें किसीका कि कोई उसकी प्रशंसा करे या न करे।' महेश आवेशमें बोल रहा था-- 'संसार तो उस कुएँ और तालाब बनानेवाली उदार स्त्रियोंका नामतक नहीं जानता। कोई नामका पत्थर पढ़कर रट भी ले तो इससे उस बुढ़ियाका क्या लाभ ? कितना झूठा मोह है। कितनी मूर्खता है और इसी मूर्खताके चक्करमें बेचारा महाकवि ग्रन्थका कीड़ा बनकर उसीमें पिस गया।'

मित्रोंकी समझमें केवल इतनी बात आयी है कि

उनका यह मित्र सचमुच पागल हो गया है। वे उसकी ओर बड़ी चिन्ता और आशङ्कासे देख रहे हैं। उनमें यह विवाद भी चलने लगा है कि ग्रामके वैद्यजीको बुलाकर पहले दिखा लेना चाहिये या नगरसे डाक्टरको ही बुलाना चाहिये। महेशके पिताको समाचार देने उन्होंने एक व्यक्तिको दौड़ा दिया है।

'कितना पागलपन है। कितनी मूर्खता है। जिससे कोई लाभ नहीं, उस नामके मोहके पीछे लगभग सारा संसार पागल हो रहा है।' महेश एक बार खुलकर हँस पड़ा और फिर गम्भीर हो गया—'नहीं, मैं अपनेको पागल नहीं होने दे सकता।'

लोग दौड़-धूप करने लगे हैं—'महेश पागल हो गया।' लेकिन महेश—पागल यदि अपनेको पागल समझने लगे तो उसका पागलपन टिकता नहीं। महेशकी सम्मति और विचारका तो कोई महत्त्व है नहीं। आप क्या समझते हैं?

वीरताका लोभ

शरद्की सुहावनी ऋतु है। दो दिनसे वर्षा नहीं हुई है। पृथ्वी गीली नहीं है; परन्तु उसमें नमी है। आकाशमें श्वेत कपोतोंके समान मेघशिशु वायुके वाहनों-पर बैठे दौड़-धूपका खेल खेल रहे हैं। सुनहली धूप उन्हें बार-बार प्रोत्साहित कर जाती है। पृथ्वीने रंग-बिरंगे पुष्पोंसे अंकित नीली साड़ी पहन रक्खी है। पतिंगेके झुण्ड दरारोंमेंसे निकलकर आकाशमें फैलते जा रहे हैं। आमोद और उत्साहके पीछे मृत्युके काले भयानक हाथ भी छिपे हैं, इसका उन्हें न पता है और न चिन्ता ही।

भिंडीके खेतमें मोटा बंदर दोनों हाथोंसे भिंडियाँ तोड़कर मुँह भरता जा रहा है। उसके कण्ठके दोनों ओरका भाग फूल उठा है। बार-बार वह दो पैरोंसे खड़ा होता है, इधर-उधर देखता है और फिर नीचे बैठकर भिंडियोंको मुखमें भरने लगता है। उसे अपना पेट भर लेना है। कोई आवे और पत्थर मारे, इससे पहले भागकर आमके पेड़पर चढ़ जानेको उसे प्रस्तुत रहना है। वीरता दिखाना होगा तो आमकी डालपर पहुँचकर, मुख नीचे झुकाकर, खों-खाँ करके वह दिखा लेगा। अभी तो उसे सावधान रहना है।

पीले मक्खनके रंगकी छोटी तितलियाँ इधर-उधर उड़ रही है। काले पंखोंवाली, गाढ़े पीले, नारंगी या सुचित्रित रंगके पंखोंवाली बड़ी तितलियोंसे उनकी न

कोई स्पर्धा है, न कोई लड़ाई। वे बहुधा थोड़ी ऊँचाईतक उड़ती हैं। इधर-उधर बैठती हैं और फिर उड़ जाती हैं। उन्हें नन्हें फूलोंका रस बहुत छोटी बूँद जितना मिल जाय इतना ही बहुत है। उनको कहाँ वीरता दिखानी है। उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं कि पृथ्वीपर फुदकते फिरनेवाले टिड्डे उनके कोमल सुन्दर पंखोंकी प्रशंसा नहीं करते और मिट्टीके पत्तेके डंठलसे लगा मटमैला मोटा कीड़ा उनकी ओर नहीं देखता।

बिलमेंसे एक चूहेने मुख निकाला। उसने अपनी बड़ी मूँछें इधर-उधर कीं, हवामें कुछ सूँघता रहा और फिर बिलमें घुस गया। वह इतना डरपोक क्यों है? क्या हुआ जो चितकबरी बिल्ली वहाँ घासमें दुबकी बैठी है और बड़े ध्यानसे उसके बिलकी ओर देख रही है। उसे थोड़ी वीरता दिखानी थी। कदाचित् वह बिल्लीको छका सकता—वह भागकर दूसरे बिलमें भी छिप जाता तो वह गिलहरी उसकी प्रशंसाके छन्द बड़े सुन्दर स्वरमें गाती जो पेड़की झुकी हुई डालीकी अन्तिम फुनगीतक बार-बार दौड़कर आती है और पूँछ पटक-पटककर बिल्लीको कोस रही है।

'नहीं—इनमेंसे कोई वीर नहीं है। इनमें वीरताका नाम भी नहीं है।' वह लौट पड़ा। उसे अपने मित्रका पत्र मिला है। उसके मित्रने उसे वीरताका एक आदर्श सुझाया है। मित्रके पत्रका उसे उत्तर देना है। व्यर्थ है यह सब—प्रकृतिमें उसे ऐसी कोई प्रेरणा नहीं मिल रही है, जिससे वह अपने मित्रके पत्रका उत्तर दे।

गेरुए खपरैलोंके रंगका काले पंखोंवाला भद्दा कीड़ा अपने चारों पंखोंको ऊपर उठाकर भन-भन करता बड़े विचित्र ढंगसे उड़ रहा है। यह क्या ? सबसे कोमल, सबसे सुन्दर और सुगन्धित गुलाबके पुष्पपर वह आकर बैठ गया है। सृष्टिकर्ताने सृष्टिका सबसे भव्य स्थान क्या इस घिनौने कीड़ेका सिंहासन बननेके लिये बनाया। परंतु वह तो उस पुष्पको चरता जा रहा है। पंखड़ियोंको काटकर कुरूप किये दे रहा है। सौन्दर्य, सौरभ और मृदुलतासे उसकी नैसर्गिक शत्रुता क्यों है ?

उसे अपने मित्रका पत्र मिला है। पत्र उपेक्षा करने योग्य नहीं है। वह कल दोपहरसे उस पत्रपर विचार कर रहा है। मित्रने लिखा है—

'बन्धु, मैं यहाँ प्रसन्न हूँ। यहाँ एक अच्छे सज्जन पुरुष हैं श्री······ वे देशके चार छः प्रख्यात········ व्यक्तियोंमें हैं। उनकी सम्मति है कि धार्मिक लोगोंकी पलायनवादी नीति ठीक नहीं है। इसमें कोई वीरता नहीं है। उनकी रायमें विकृतिके केन्द्रोंमें रहकर उनको सुधारने, उन्हें परिष्कृत करने और उनको उपयोगी बनानेमें वीरता है। वे सदाचारी हैं, विनम्र हैं और ··।'

पत्रका अक्षर-अक्षर आप पढ़ लें, इससे कोई लाभ नहीं होना है। पत्र किसका है, किसे लिखा गया आदि भी सामान्य बातें हैं। मुख्य बात तो उसकी वीरताकी प्रेरणा है। मित्र विद्वान हैं, विचारशील हैं, स्वाभिमानी हैं। वे न तो झूठ बोलेंगे और न चाटुकारी करेंगे। ऐसा करनेसे कोई लाभ भी नहीं है। उनकी बातोंपर अविश्वास

करनेका कोई कारण नहीं है। उसे मित्रके पत्रका उत्तर देना है—क्या उत्तर दे वह।

× × ×

मित्रके पत्रका उत्तर देना है। प्रकृतिसे उसे प्रेरणा नहीं मिलती तो वह अपनी स्मृतिकी कोठरियोंको ढूंढ़ेगा। अपनी मेजपर बैठकर उसने केशोंको अस्तव्यस्त करके सिर खुजलाना प्रारम्भ कर दिया है।

एक स्मृति

बहुत छोटा था वह। समाचार-पत्रोंमें बड़े-बड़े शीर्षकोंमें छपा था कि विश्वविजयी पहलवान जिविस्को-को भारतीय पहलवान गामाने अखाड़ेमें पहुँचते ही चारों खाने चित्त कर दिया। गामा उस समय तो भारतीय पहलवान ही था। समाचारको उदधृत करनेमें कुछ भूल हुई हो तो आप क्षमा करेंगे, क्योंकि बचपनकी स्मृतिकी कोठरीसे निकला यह समाचार बूढ़ा होकर सिकुड़ गया है और उसमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं।

उस दिन पाठशालामें अध्यापकजीने व्यायामकी उपयोगिता बताते हुए कहा था—'गामाने अपनी पूरी शक्ति, पूरा श्रम, पूरा जीवन लगा दिया है शरीरकी इस महती शक्तिको प्राप्त करनेके लिये। अध्यवसाय ही सफलताका मन्त्र है। गामाकी सफलता और उसकी कीर्तिका कारण है उसका अध्यवसाय।'

उसी दिन उसके कई सहपाठियोंने अखाड़ा खोदा।

बड़े उत्साहसे वे दण्ड-बैठक करनेमें जुट गये। एक मित्रने उससे भी कहा—'तुम भी चलो!' वह सहपाठियोंमें अधिकांशसे दुर्बल था। व्यायामसे उसकी सहज अरुचि थी। उसने कह दिया—'मुझे गामा नहीं बनना है।'

विद्यार्थियोंका उत्साह दो-चार दिन चला। उनकी संख्या तीन दिनतक बढ़ती रही, फिर आठ दिन लगभग एक-सी रही और उसके बाद घटने लगी। दो महीने बाद अखाड़ेकी मेड़के अतिरिक्त यह जाननेका दूसरा कोई उपाय नहीं था कि वहाँ अखाड़ा भी खोदा गया था। लेकिन आठ दिनके उत्साहमें एक बालकके पैरमें मोच आ गयी थी और वह दो सप्ताह लंगड़ा बना रहा। एकके नेत्रोंमें एक बार मिट्टी पड़ गयी थी। उसके नेत्र लाल हो गये और रात्रिमें बड़े कष्टसे वह सो सका। गामा निश्चय वीर हैं; किन्तु बालकोंमें कोई छोटा-सा पहलवान भी नहीं बन सका।

दूसरी स्मृति

स्मृतियोंकी कोठरियाँ परस्पर गिचपिच कर लेती हैं। वे सुसभ्य नहीं हैं। उन्हें इतना भी पता नहीं कि प्रत्येक स्मृतिको क्रमशः सजाकर रखना चाहिये और क्रमशः देना चाहिये। भेड़ोंके झुण्ड-जैसी दशा है। कोई भेड़ कहींसे उठकर भाग पड़ेगी और सब-की-सब उसके पीछे झुण्ड बनाकर चल देंगी बिना किसी क्रमके। इनको बनानेवाला निश्चय सेनापति नहीं है। अन्यथा वह इन्हें ठिकानेसे पंक्तिबद्ध रहने और राइट-लेफ्ट करते

चलना सिखलाता। अब सृष्टिकर्ताकी भूलका यह परिणाम है कि पता ही नहीं लगता कि कौन-सी बात पहलेकी है और कौन-सी पीछेकी।

प्रोफेसर राममूर्तिके व्यायामोंका समाचार पत्रोंमें छपा था। वे मोटे-मोटे लोहेके छड़ तोड़ देते थे। दो मोटरोंको पकड़कर रोक लेते थे। छातीपर हाथी चढ़ा लेते थे। उनकी अद्‌भुत शक्ति, अद्‌भुत कौशल और अद्‌भुत सुयश पाया उन्होंने इसके बदले। वे निश्चय वीर हैं। उनकी वीरता, उनका यश आदि उनके अध्यवसायका परिणाम है। इसके लिये पूरा जीवन लगा दिया उन्होंने।

'तुम राममूर्ति बनोगे ?' किसीने उससे नहीं पूछा। पूछता भी तो क्या लाभ था। उसे व्यायामसे चिढ़ है। वह राममूर्ति बनना चाह ही नहीं सकता और ऐसी बेसिर-पैरकी चाहसे लाभ ? छछूंदर शीर्षासन करने लगे तो क्या योगिराज हो जायगी ?

अब स्मृतियोंके द्वार एक साथ धड़-धड़ाकर खुल गये हैं। काले चीटोंके बिलमें पानी पड़नेपर जैसे वे एक साथ भर-भराकर निकल पड़ते हैं, स्मृतियाँ भी इसी प्रकार निकलती हैं। लज्जाशील बालकोंके समूहमें-से किसी बच्चेको पुकारिये—वह मुँह छिपा लेगा या दूसरे साथीके पीछे छिप जायगा। लेकिन एक-दो बालकों-से हेल-मेल करते ही सब-के-सब पास दौड़ आयेंगे। मना करनेपर भी ठेलमठेल करेंगे। इतिहास और पुराणोंमें महान् वीर सोये हुए हैं। मेरी स्मृतिके सुखदायक कोषमें

उनकी जो मूर्तियाँ विश्राम कर रही थीं, वे सहसा जाग्रत् हो उठी हैं। उनकी पंक्तियाँ समाप्त होनेका नाम नहीं लेंगी। उन महान् वीरोंमें आप बहुत अधिकसे परिचित हैं, उन्हें बिना जाने ही प्रणाम कर लेना उचित है।

नवीनतम दो स्मृतियाँ—

सरगमाथा (एवरेस्ट) को वहाँ पहुँचकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेवाले श्रीतेनसिंह—वे महान् शूरमा। पर्वतारोहणका उनका अध्यवसाय, उनकी कीर्तिका आधार-स्तम्भ है। लेकिन सच मानिये, उसमें छोटेसे हिमपर्वतपर चढ़नेका उत्साह भी वह सब विवरण एवं प्रशंसाएँ पढ़कर नहीं आया जो तेनसिंहकी सफलता-पर समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुए। वह बहुत दुर्बल है। वह कहता है—'तेनसिंह वीर हैं; किंतु इन समाचार-पत्रोंको तो थोड़े ही दिनोंमें किताबी कीड़े चाट जायँगे अथवा दूकानदार पुड़िया बाँध-बाँधकर समाप्त कर देंगे।' अपने अटपटे तर्कपर वह स्वयं खुलकर हँस लेता है।

दूसरा समाचार किसी योगीके सम्बन्धमें छपा था। बम्बईमें या ऐसे ही 'क'से 'ज्ञ'के किसी समात्रिक या अमात्रिक अक्षरसे जिसका नाम प्रारम्भ होता था, उस नगरमें उन योगी महाराजने बहुत-से प्रतिष्ठित दर्शकोंके सामने—क्योंकि दर्शक तो सदा प्रतिष्ठित ही होते हैं, उन्होंने काँचके टुकड़े चबाकर दिखाया, तेजाब पी और विश्वका भयानकतम विष खाकर सबको चकित कर

दिया। उनकी कोई हानि नहीं हुई।

वे वीर थे, इसमें भला किसे संदेह होगा। समाचार-पत्र लिखे या न लिखे, यह बात सवा सोलह आने पक्की है कि उनकी प्रशंसामें बजी तालियोंसे आकाश गूँज गया होगा। पक्षी चौंककर चक्कर करने लगे होंगे और छिपकलियोंने पूँछ हिलाकर परस्पर पूछा होगा——'संसारमें कौन-सी नई घटना हो रही है?' लेकिन उसमें इतना अध्यवसाय और इतनी रुचि नहीं है कि वह थोड़ा-सा कड़ुआ तेल ही पीनेका मन कर ले।

उसे अपने मित्रके पत्रका उत्तर देना है। पत्र वीरताकी प्रेरणा देता है उसकी स्मृतिके भण्डारमें वीरोंके अद्भुत आकारोंका कोई अभाव नहीं। लेकिन प्रत्येककी वीरताके पीछे जो श्रम, जो अध्यवसायका इतिहास है—वह क्या उत्तर दे अपने मित्रको।

× × ×

'वीरता निश्चय उत्तम गुण है। उससे लोकोत्तर कीर्ति प्राप्त होती है।' लीजिये, वह अपने मित्रके पत्रका उत्तर देने बैठ गया है। लेकिन उसके लिये सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देना पड़ता है मेरे बन्धु—सम्पूर्ण जीवन। उसके लिये कठोर श्रम, पूरी सावधानी एवं महान् अध्यवसाय मूल्यके रूपमें अर्पित करना पड़ता है।'

अब वह क्या करे, उसे वह बंदर स्मरण आता है।' जिसे वह अभी खेतमें भिंडियाँ खाते देख आया है। वह अपने पत्रको उस बंदरके प्रभावसे बचा नहीं सकता।

उसने लिखा—' जीवन बहुत थोड़ा है। किसी क्षण काल अपनी भयानक गुलेल लिये आ सकता है। मनुष्य-जीवनका यह खेत छूटा और छूटा। अवसर गया तो चला ही जायगा। मुझे वीर बननेके बदले सावधान रहना अधिक ठीक लगता है।'

उसे वे तितलियाँ स्मरण आयीं। वह लिखता गया—'समाचारपत्र क्या लिखते हैं और लोग कितनी प्रशंसा करते हैं-- इसका कुछ बहुत अर्थ नहीं है। अनन्त जीवनके लिये चुपचाप कुछ पाथेय प्राप्त हो जाय, मुझे तो किसी भी वीरतासे यह बहुत अधिक महत्त्वकी बात जान पड़ती है।'

उसके पत्रका अगला अंश था—' मृत्युकी बिल्ली छिपी बैठी है। चूहेकी वीरताका क्या अर्थ है? गिलहरियाँ प्रशंसा करें या न करें, उसे तो अपनी रक्षाकी चिन्ता करनी चाहिये।'

अन्तमें उसने लिखा—' मेरे भाई रोग, शोक, दुर्बलताके घिनौने कीड़े संसारमें भरे पड़े हैं। मनुष्यका मन पत्थरके समान नहीं है। वह पुष्पके समान है और बुराइयोंके कीड़े उसके बाहरसे ही आवें, यह आवश्यक नहीं है। वे उसके भीतर भी छिपे बैठे हैं। अनुकूल वायुमण्डल मिलते ही वे नोच-नोचकर खाना प्रारम्भ कर देंगे। परिस्थिति उनके अनुकूल हो तो वे क्षमा करनेवाले नहीं हैं।'

निश्चय कोई अपनेको भेड़ियोंके मध्यमें डाल दे और सुरक्षित बचा रहे, उनसे मित्रता कर ले या उन्हें पराजित

कर दे, यह महान् वीरता है। लेकिन मेरे मित्र—ऐसा करनेका प्रयत्न करनेमें सहस्रमें नौ सौ निन्यानबे बार यही भय है कि प्रयोक्ताके शरीर-खण्ड उन भूखे पशुओंकी अँतड़ियोंमें ही पच जायँ। ऐसी वीरताके बदले अच्छा यही होगा कि मनुष्य सीधा मार्ग ले अपने लक्ष्यपर जानेके लिये और सीधा मार्ग वह है जिसमें विपत्तियोंका भय न हो। जिसमें हम अधिक-से-अधिक सुरक्षित रह सकते हों।'

उसने पत्र समाप्त कर दिया, लेकिन क्या उसने पत्र भेजा? उसके मित्रको उसका पत्र मिला ही नहीं; क्योंकि अपना पत्र डाकखाने भेजनेके बदले उसने फाड़कर फेंक दिया। उस दिन वह संध्या-समय मन-ही-मन कह रहा था—'सृष्टिके दयामय कर्ता! वीरोंकी मैं वन्दना करता हूँ। उन्हें हतोत्साह करनेसे मुझे क्या मिलेगा। लेकिन मैं वीर नहीं हूँ। मैं तो तेरी सृष्टिका एक साधारण प्राणी हूँ। मुझे ऐसी बुद्धि मत देना कि मैं अपनेको विकृत परिस्थितिमें डाल दूँ और वीरताके लोभसे पतनकी आशंकाको आमन्त्रण दे बैठूँ। तू मुझे शक्ति दे—केवल ऐसी शक्ति कि वीरताके प्रलोभनसे बचकर मैं सावधान रहूँ और अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ता रह सकूँ—अप्रख्यात एवं कोलाहलहीन गतिसे निरन्तर।'

स्नेह जलता है

'अच्छा तुम आ गये ?' माताके इन शब्दोंको आप चाहें तो आशीर्वाद कह सकते हैं ; किंतु कोई उत्साह नहीं था इनके उच्चारणमें। उसने अपनी पीठकी छोटी गठरी एक ओर रखकर माताके चरण छुये और तब थका हुआ एक ओर भूमिपर ही बैठ गया।

'मा मुझे देखते ही दौड़ पड़ेगी। दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे चिपका लेगी। वह रोयेगी और इतने दिनोंतक न आनेके लिये उलाहने देगी।' वर्षोंसे पता नहीं क्या-क्या आशाएँ उमंगें, कल्पनाएँ मनमें पाले हुए था वह। 'मैं मांके पैर छूऊँगा। अपने हाथों उसके नेत्र पोंछूँगा। उसे मनाऊँगा। वह बड़े स्नेहसे मेरी एक-एक बात पूछेगी। मेरे लिये दौड़ेगी स्वयं चाय बनाने और मैं उसे मना करूँगा।' जाने कितनी बातें··· लेकिन क्यों वह ऐसी आशा करता था ? वह कौन-सी सम्पत्ति लेकर घर लौटा है कि उसका स्वागत हो, उसे स्नेह मिले। वह भड़कीले कपड़ोंमें आता, सबके लिए सुन्दर उपहार लाता, चमकते जूतेका मच्-मच् शब्द करता द्वारमें प्रवेश करता—अवश्य उसका स्वागत होता। वह मैले फटे-चिथड़े लपेटे, नंगे पैर, पीला-पीला चेहरा, रोगसे दुर्बल शरीर लिए मनहूसीकी मूर्ति बना आया है। घरमें अन्न नहीं है, इस वर्षका लगान दिया नहीं गया, बच्चोंके शरीरपर भी वस्त्र नहीं और सबकी जिसपर आशा अटकी थी, वही स्वयं

भिक्षुक-सा बना आ पहुँचा है। घरकी समस्याएँ ही क्या कम हैं; अपना ही दुःख, अपना ही अभाव क्या छोटा है? और ऐसी अवस्थामें जब वह भी एक प्राणीकी रोटीका भार बढ़ाने ही आया है—घरवालोंके सारे अभाव, सारे क्लेश जैसे आज नये हो उठे हैं। क्षोभ ऐसे बढ़ गया है, जैसे पके घावपर ठोकर लग गयी हो। उसका स्वागत? सब गुमसुम हैं, सब नेत्रों एवं चेष्टाओंसे ही उपेक्षा व्यक्त करते हैं; कोई घरसे निकल जानेको नहीं कहता, यही क्या कम है।

'तुम अपना यह खजाना कहीं ऊपर रख दो।' चाय नहीं, जल नहीं, दो मीठे शब्दतक नहीं। कोई अपरिचित भी घरमें आया होता तो उससे पूछा जाता कि वह कहाँसे आया है। यहाँ अपने ही घर वह पूरे दो वर्षपर लौटा है और कोई उससे कुशलतक नहीं पूछता। उसकी वही स्नेहमयी भाभी झल्लाई, झुँझलाई कह रही है— बच्चा आता होगा। कहीं तुम्हारे बहुमूल्य रत्न उठा न ले।'

कितना कष्ट सहकर, कितनी कृपणतासे वह भाभीके लिए एक साड़ी लेनेको कुछ पैसे बचा सका। बीमारीके पीछे दूधतक तो उसने लिया नहीं। 'भाभी हँसती-दौड़ती आवेंगी और मेरी गठरी उठाकर भाग जायँगी। मैं उन्हें रोकूँगा, खीझूँगा और वे मेरी लायी साड़ी पहिनकर मेरे लिये जलपान लिए अपनी कोठरीसे निकलेंगी।' उससे सदा हँसकर बोलनेवाली, अपने पुत्रके समान उसके भोजन-वस्त्रादिकी खोज-खबर लेनेवाली भाभी इतनी रूखी हो जायँगी, इसकी तो कभी स्वप्नमें भी उसे आशा नहीं

थी। उसकी मैली छोटी गठरीमें एक उजली लाल किनारे-की तह की हुई साड़ी है, किसी दुर्बलके मलिन शरीरमें छिपे दया एवं सहानुभूतिसे पूर्ण निर्मल हृदयकी भाँति। किस साहससे वह अब उसे निकाले ?

'बच्चा आता होगा'—बच्चा मोहन ! भाभीकी बात कानोंमें टकराकर सूनी रह गयी। कल्पनाने एक दूसरा चित्र उपस्थित किया। जब चारों ओर रोष, तिरस्कार, उपेक्षाका अन्धड़ चल रहा है, एक शीतल झकोरा आता जान पड़ा। 'मोहन—नन्हा, गोल-मटोल, सुन्दर किलकता-सा मोहन !' छिः मनुष्य ? भगवान् काल क्या तेरी कल्पनाके लिए अपने पद रोके खड़े रहेंगे ? बच्चा युवक होता है, युवक वृद्ध होता है; किंतु वर्षों पीछे भी तू उसे अपने उसी पुराने रूपमें पानेकी आशा करता है ? मोहन अब वही एक वर्षका शिशु नहीं, वह तीन वर्षका हो गया है, यह तुझे क्यों स्मरण नहीं आता ?

'मोहन ! आओ भैया !' एक नंगा धूलि-भरा दुबला-सा गोरा बालक दौड़ता आया और अपने घरमें एक अपरिचितको देखकर सहमा-सा खड़ा हो गया उसी विचित्र मनुष्यको देखता हुआ। 'मैं तुम्हारा चाचा हूँ भैया !' अब भी आशा थी कि बालक पहचान लेगा और समीप आ जायगा; किंतु बालकके नेत्र स्पष्ट कहते हैं— 'तुम कौन हो ? मैं तो किसी चाचाको नहीं जानता। मुझे तुम्हारे पास डर लगता है। क्या पता तुम हौआ हो या भकौआ। मैं नहीं आऊँगा।'

'देखो, मैं तुम्हारे लिए घोड़ा लाया हूँ।' अब गठरी

खोली गयी। लकड़ीका एक छोटा-सा लाल-हरा चमकता घोड़ा—बालकके नेत्र खिलौनेपर लग गये। बार-बार पुचकारने पर डरता-डरता धीरे-धीरे आगे बढ़ा वह। हाथ बढ़ाकर खिलौना ले लिया उसने और चाचाने उसे गोदमें खींच लिया। बालक छटपटाने लगा गोदसे छूटनेके लिए। उसे अपना खिलौना चाहिये। चाचासे उसे कोई मतलब नहीं।

'मा ! मा ! मेरा घोड़ा !' दौड़ता हुआ बालक अपनी माताके पास पहुँचा

'चल ! घोड़ा ले आये हैं ये—दे दे उनका घोड़ा उन्हें।' माताने बच्चेके हाथसे छीनकर खिलौना फेंक दिया उसके सामने। पट्से करके वह गिरा और उस लकड़ीके घोड़ेका एक कान तथा एक पैर टूट गया। बालक सन्न हो गया। उसका मुख लटक गया और एक मिनट बाद उसके नेत्रोंसे अश्रु गिरने लगे। अन्तमें हिचकियाँ लेता हुआ वह माकी गोदमें ही मुख छिपाने दौड़ा; पर माने क्रोधसे झटक दिया भूमिपर उसे।

'भाभी !' उसके मुखसे और शब्द नहीं निकले। बायीं हथेलीपर मस्तक रखकर झुक पड़ा वह। उसे लगता है कि पूरी पृथ्वी घूम रही है—घूमती जा रही है।

'तुम ऐसे भूमिमें क्यों बैठे हो ?' बड़े भाई पता नहीं कबसे आकर उसके सामने खड़े हैं। उसने उनके पैरोंमें सिर रख दिया और बच्चोंकी भाँति हिचकियाँ लेकर रोने लगा। 'उठो, चटाईपर बैठो ! अरे, चाय तो ले आओ।' पत्नीको उन्होंने आज्ञा दी।

'भया !' उससे बोला नहीं जाता है। उसके नेत्रोंकी

धारा रुकती नहीं है।

'तुम बीमार हो गये थे?' बड़े भाईमें स्नेह है या नहीं, कहना कठिन है, किंतु शिष्टाचार तो है ही।

'मैं मरते-मरते बचा हूँ। मर-खपकर जो कुछ बचा पाया था, बीमारीकी भेंट हो गया।' उसने भरे कण्ठसे कहा—'भाग्यमें तुम्हारे चरणोंके दर्शन थे, इसीसे यहाँ पहुँच सका।'

'चलो, अब दो-चार दिनमें यहाँका हवा-पानी स्वस्थ कर देगा तुम्हें।' आश्वासन दिया बड़े भाईने और साथ ही घरका समाचार भी दिया—'लगान दो वर्षका बाकी है। पिछले वर्ष खेतोंमें कुछ हुआ ही नहीं। घरमें इस वर्ष कुछ भी नहीं है। उधारके अन्नसे कई महीनोंसे एक समय भोजन करके काम चलाया जा रहा है। पासमें दूसरे गाँवके जमींदार एक बाँध बनवा रहे हैं। अच्छी मजदूरी है। मुझे तो खेतोंसे अवकाश ही नहीं मिलता।'

'मैं कलसे ही वहाँ कामपर लग जाऊँगा।' वह और क्या कहे? दो वर्षपर घर लौटा है, लम्बी बीमारीने रक्त-मांस चूस लिया है और घरपर दो घूँट चाय मिलनेसे पहले ही उसे यह सब सुना दिया गया है, बड़ी शिष्टता एवं आत्मीयतासे। संसार जब उसकी हड्डियाँ खँखेड़ना ही चाहता है, भागकर कहाँ जायगा वह?

× × ×

पहाड़की तराईमें एक छोटा-सा गाँव है। मिट्टीकी दीवारें और फूसके छप्पर एक दूसरेसे सटे हुए छोटे-छोटे घर हैं चारों ओर कँटीली बाड़से घिरे हुए। समीपके वनसे चीता, शेर, तेंदुआ कभी-कभी रातमें इस घेरेबन्दीमें भी

घुस पड़ते हैं और कोई पशु उठा ले जाते हैं। बकरियाँ, भैंसें और गायें—इनके गोबरसे पूरा गाँव ही गोष्ठ हो गया है। गाँवके एक ओर तो वन है; किंतु तीन ओर खेत हैं। ऊँची-ऊँची मेड़ें और उनपर सूखे काँटोंकी बाड़। इतना सब न किया जाय तो क्या सूअर और हिरन खेती बचने देंगे; फसलके दिनोंमें रात-रातभर जागकर शशक, सेही, शृगाल आदिसे रखवाली करनी पड़ती है।

सूखे मुख, दुर्बल देह, फटे मैले वस्त्र—कठोर श्रम करनेवाले थे ग्रामवासी किससे कम तपस्या करते हैं? किस तपोवनसे घटकर है इनका यह ग्राम? लेकिन कहाँ तपस्वीका निर्लिप्त आनन्दमग्न मानस और कहाँ···। मनुष्य तो मनुष्य ही है। वह नगरोंमें रहे या सुदूर वन्य ग्रामोंमें। वही दौड़-धूप, वही रोटी-कपड़ा, वह घर-खेत, वही स्त्री-बच्चे और चिन्ता, लालसा, श्रम—वासनाकी अशान्तिपूर्ण क्षुधा क्या स्थानभेदसे मन्द पड़ना जानती है?

इस छोटे गाँवमें एक छोटा-सा घर है। दो भाई, उनकी एक वृद्धा माता, बड़े भाईकी स्त्री और उस स्त्रीकी गोदमें एक वर्षका एक घुँघराले बालोंवाला गोलमटोल गोरा सुन्दर शिशु। इतना परिवार है। पहाड़के पासके खेत वैसे ही बंजर होते है और फिर इस ओर वर्षाकी कमी प्रायः रहती है। परिवार दरिद्र है; किंतु है स्नेही। सब एक दूसरेसे सहानुभूति रखते हैं।

रामनाथ यह पूरा नाम है उसका। माँ और भैया उसे रामू कहते हैं और इसीसे गाँववाले भी उसे रामू ही कहते हैं। गठा हुआ पुष्ट शरीर है। नागपञ्चमीको जब

एक महीना रह जाता है, गाँवके अखाड़ेकी उसीसे शोभा होती है। गाँवमें सभी उसका सम्मान करते हैं।

'बेटा! तू भी कुछ काम किया कर खेतपर।' मा उसे यदा-कदा उपदेश करती हैं।

'अभी तो वह बच्चा है, उसके खेलने-खानेके दिन हैं।' बड़े भाई कभी उससे कुछ करनेको कहते नहीं। वह स्वयं कुछ करता है तो उसे मनाही करते हैं।

'आज तुमने एक रोटी कम खायी है!' गरीबका घर है। भरपेट भोजन जिस दिन मिले, उस दिन पर्व समझना चाहिये; लकिन भाभी स्वयं चाहे उपवास कर ले, उसके लिए पूरा भोजन बचा रखती हैं और बैठकर आग्रह करके भोजन कराती हैं उसे।

मोहन—एक वर्षका छोटा-सा मोहन तो अपने चाचासे ही चिपका रहता है। रातको नींद टूटनेपर वह 'चाचा, चाचा' कहकर ही रोता है। रामूका सम्पूर्ण सुख तो मोहन ही है।

'मैं रंगून जाऊँगा!' एक दिन अचानक रामूने घरको अपने प्रस्तावसे चौंका दिया। रंगूनसे लौटा है विजयपाल। सिरपर अंग्रेजी ढंगसे कटे सुन्दर बाल हैं, हाथोंमें एक सस्ती घड़ी बँधी है, शरीरपर उजले मलमलका कुर्ता है, पैरोंमें चमचम करता बूट है। रामू विजयपालसे मिल आया है। 'रंगूनमें रुपये तो जैसे बरसते हैं।' पता नहीं क्या-क्या कहा है विजयपालने उससे। अब वह भी रंगून जायगा।

माँ रोती है। भैया कहते हैं—'तुम यहीं काम करो।' भाभी रोक रही हैं और साथ ही पूछती भी हैं—'मेरे

लिए क्या लाओगे ?' नन्हे मोहनको कुछ पता नहीं। चाचा उससे कहता है—'तेरे लिये घोड़ा लाऊंगा, हाथी लाऊँगा, पैरगाड़ी लाऊँगा।' वह हँसता है। उसे क्या पता कि रंगून कोई चिड़िया है, हिरन है या मिठाई है।

'मैं रंगून जा रहा हूँ।' पड़ोसके गाँवमें एक लड़की है; छिपकर रामूको उससे यह बात कहनी पड़ी, जब वह अपनी गायें वनमेंसे लौटा रही थी। उसने एक बार मुड़कर देखा रामूकी ओर और केवल 'हूँ!' कहा! रामूको लगा कि उसकी आँखें भर आयी हैं। 'मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। तेरे लिए बहुत-से गहने और रेशमकी साड़ियाँ लाऊँगा।' रामूने साथ चलते-चलते कहा। उसने सिर झुका लिया। पैरोंकी गति बढ़ी या मन्द हुई, कुछ उलझनकी बात है। रामू और वह बचपनसे साथ खेले हैं। वनमें दोनों साथ बकरियाँ चराते थे और झरबेरी एकत्र करते थे। लेकिन अब उसकी रामूके साथ मँगनी हो गयी है। अब बात बदल गयी और सम्भवतः बदली बातने गूँगी कर दिया उसे। वह गूँगी हो नहीं गयी है, केवल रामूके पास रहनेपर गूँगी हो जाती है।

अन्तमें विजयपालके साथ रामू रंगूनके लिए चल पड़ा। बड़े भैया उसे स्टेशनतक पहुँचा गये। गाँवसे दूरतक तो बहुत-से लोगोंने पहुँचाया था। जब गाड़ी स्टेशनसे चल पड़ी, उसके नेत्रोंसे अश्रु टपक रहे थे। विजयपाल रंगूनके किस सुयशका वर्णन कर रहा है, इसका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था।

× × ×

वह रंगून अपने लिए– अपने सुखके लिए गया ? उसका अन्तरात्मा जानता है या फिर घट-घट की जानने-वाला जानता है । अपनी जन्मभूमि , अपने संगी-साथी , अपना सौहार्दपूर्ण परिवार छोड़नेमें उसे कितनी व्यथा हुई थी , वही जानता है । रंगून पहुँचनेपर भी कई दिनों-तक उसे घरकी स्मृति ही दिन-रात बनी रहती थी । न भोजन अच्छा लगता था , न वस्त्र । किसीसे बोलना अखरता था । भरे-भरे नेत्र देखकर आस-पासके लोग समझाते और कभी-कभी परिहास भी करते थे ।

घर छोड़कर वह गया था , उसे जाना पड़ा था कहना ठीक होगा । बड़े भाई दिनभर श्रम करते थे और इतनेपर भो दोनों समय पेट भरनेको सूखी रोटी जुटती नहीं थी । भाभीकी साड़ीमें रोज एक पैबन्द बढ़ता जाता था । नन्हे मोहनको पिलानेके बदले बकरीका दूध बेचना पड़ता था । दूध बेचा न जाय तो लगान कहाँसे आवे ? वह कबतक यह सब देखता ? उससे कोई कुछ कहता नहीं था ; किंतु उसके भी तो नेत्र थे ।

रंगूनका वैभव – वहाँकी चकाचौंध , लेकिन वह सब सच होकर भी उसके लिए स्वप्न था । उसे तो एक छोटी-सी गंदी कोठरी , दिनभर हड्डीतोड़ परिश्रम और रूखी रोटी या उबला चावल नमकके साथ मिलता था । सब उसका परिहास करते थे । सब उसे कृपण बतलाते थे । एक-एक कौड़ी दाँतसे पकड़ना सीख गया था वह । परिश्रम और पैसा – उसके भाई , उसकी भाभी , उसके भाईका नन्हा पुत्र मोहन – और वह उन सबके लिए ही तो रंगून

आया है। वह पैसा जोड़नेमें जुट गया है। एक पैसेका साग लेना या सिरमें अधेलेका तेल डाल लेना उसे बहुत बड़ा अपव्यय जान पड़ता है। वह यहाँ क्या सुख भोगने आया है ?

विजयपालने अब उससे मिलना भी बंद कर दिया है। वह स्वस्थ है, देखनेमें सुन्दर है, उसका शरीर सुगठित है। विजयपाल उसे अपने साथ कुछ आशा लेकर ही तो लिवा लाया था। एक अच्छी धनी बर्मी स्त्री उससे विवाह कर लेगी। वह धनी हो जायगा और विजयपालको भी लाभ होगा। अधिक नहीं तो वह उसके धानके खेतों और बगीचोंका प्रबन्धक ही बन जायगा। अधिकांश भारतीय ऐसा करते हैं। बर्मामें विवाह करके रहना और वहाँसे स्वदेश सम्पन्न होकर लौटना—एक कुप्रथा बन गयी है। बर्मी स्त्री-बच्चोंको तो साथ लाना नहीं पड़ता, स्वदेशमें कौन जानता है कि किसने कहाँ क्या किया था। लेकिन रामनाथ है कि उल्टे सीधा होना जानता ही नहीं। विजयपालने सब साँठ-गाँठ बैठा ली है; किंतु रामू तो गाँवकी उस बकरी चरानेवालीको प्राण दिये बैठा है। भला, वह कहाँ भागी जाती है ! रुपये लेकर जायगा तो उसके पिता नाक रगड़ेंगे इसके पैरोंपर, लेकिन इस गँवारको कौन समझाये ? यह तो कहता है—'कोई जाने या न जाने, धर्म तो जानता है। मैं किसीको धोखा दूँगा तो भगवान् मुझे कैसे क्षमा करेंगे ? मुझसे यह सब नहीं होगा। अपने पसीनेकी कमाई ही मुझे लेनी है। पाप और बेईमानीका पैसा मुझे नहीं चाहिये।'

चोरोंके समूहमें रहकर कोई चोरी न करे तो क्या चैन पायेगा ? जब समाजमें ही पाप घर कर जाता है, तब सत्पुरुषोंको संकट उठाने—तप करनेके लिए तत्पर रहना ही चाहिये। रामनाथ जहाँ काम करता है, विजयपाल तथा उसके साथी वहींसे उसका टिकट कटा देनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। वह तो अपने परिश्रम और धैर्यसे टिका है। उसके संयम एवं कृपणताने उसके संगी-साथी रहने ही नहीं दिये हैं।

कोई भाग्यको क्या करे ? कठोर परिश्रम, रूखा तथा अपर्याप्त भोजन, नन्ही गंदी कोठरीमें मुर्गी-सा बन्द रहना, समुद्री नगरका अनभ्यस्त जलवायु—रामनाथ दुर्बल होता गया। बार-बार ज्वर आने लगा उसे। गरीबोंकी शुश्रूषा और चिकित्सा जैसी हो पाती है, संसार जानता है। रामनाथ विदेशमें अकेला और उसपर भी अत्यन्त कृपण। जितना वह जोड़ पाता उसका एक बड़ा भाग ज्वर आनेपर बहुत काट-कपट करनेपर भी व्यय हो जाता। अन्तमें वह गिर पड़ा चारपाईपर और पूरे छः महीने चलने-फिरने योग्य होनेमें लगे।

'तुम यदि जीना चाहते हो तो अपने घर चले जाओ !' सभी एक ही सलाह देते हैं।

'बड़े भाई, भाभी, मोहन' रामनाथको जीना तो है। उसके चित्तमें स्मृतियोंका प्रवाह चल रहा है। अन्तमें परिचितोंने एक दिन कलकत्ते जानेवाले जहाजमें बैठा दिया उसे।

'तुम्हारे रंगून आनेके छः महीने पीछे चौधरीने

अपनी लड़कीकी सगाई अन्तूसे कर दी। तुम्हारे भाईसे खेतके पानीको लेकर लड़ाई हो गयी थी उनकी।' कलकत्तेमें गाँवके कई लोग रहते है। रामनाथ उनके पास आया तो उसे यह समाचार मिला—'पिछले वर्ष उसका विवाह भी कर दिया चौधरीने।'

विपत्ति अकेली नहीं आया करती। इस समाचारका प्रभाव कहिये, समुद्री-यात्राका कारण कहिये या भोजनादिकी मार्गकी गड़बड़ी बताइये, रामू कलकत्तेमें ही बीमार हो गया। उसे सरकारी अस्पतालमें भरती कराना पड़ा। जब वह एक महीने बाद अस्पतालसे निकला, उसकी रही-सही पूँजी भी समाप्त हो गयी थी। उसके कपड़े फट गये थे; किंतु अब उसके पास पैसे कहाँ थे नये कपड़े बनवानेको।

'रामू अस्पतालमें बीमार है' रामूके भाईको घरपर यह समाचार मिल गया था। खेत सींचने हैं, बोने हैं, घरकी मरम्मत न हो तो वर्षामें टिकेगा ही नहीं वह और कलकत्ता गाँवकी सीमाके उस पार तो है नहीं। एक गरीब कृषकको इतनी बड़ी यात्रा करना परलोककी यात्रा प्रतीत होती है, यह बात नित्य रेलोंमें ही घूमनेवाले या हवाई जहाजसे फुर्र होनेवाले कैसे समझ सकते हैं।

जैसे बीमारी बिना बुलाये आयी थीं, विदा करनेकी प्रतीक्षा किये बिना चली भी गयी। गरीबोंका चिकित्सक भाग्य ही होता है, रामूको तो अस्पताल भी मिल गया था। लेकिन वह स्वस्थ होकर प्रसन्न हुआ, यह कहना

उसके साथ अन्याय करना होगा।

× × ×

'बाबा! अब आप ही मुझे शरण दो।' गाँवसे कोस-भर दूर वनमें एक झरनेके पास भगवान्का मन्दिर है; एक वैष्णव संत वहाँ रहते हैं। पासके गाँवसे कच्चा अन्न माँग लाते हैं। यह एकान्त बहुत अनुकूल जान पड़ता है भजनके लिये। रामनाथ सायंकाल ग्रामसे चलकर मन्दिरपर आया और गिर पड़ा संतके चरणोंमें। फूट-फूटकर रो रहा था वह। 'मैं यहाँकी सब सेवा करूँगा। आप जो आज्ञा करेंगे, प्राण देकर भी उसे पूरा करूँगा। मुझे अब घरमें नहीं रहना है।'

आज ही रामनाथ दो वर्ष बाद घर लौटा है और आज ही घरसे यह विरक्ति? लेकिन कौन है घरपर जो उसके आनेसे प्रसन्न हुआ हो? किसे उससे स्नेह है? एक कल्पना—एक भावुकता थी मनमें और घरसे निकल पड़ा था वह। वह चौधरीकी लड़की, उसकी नहीं, नहीं, अन्तूकी स्त्री कुएँसे जल लेकर लौट रही थी। रामनाथको देखकर भी उसने देखना नहीं चाहा। उसके पैरोंकी गति बढ़ गयी।

'तुम भी मुझे पहचानती नहीं हो?' रामनाथ पास चला गया।

'दूसरेकी स्त्रीसे रास्तेमें इस प्रकार बोलते तुम्हें लज्जा नहीं आती?' डाँट दिया उसने—'तुम गाँवके नाते उनके भाई लगते हो, सो जानती हूँ। दरवाजेपर आओगे तो हुक्का चढ़ाकर दे दूँगी।' रामनाथके पैर वहीं भूमिमें गड़से गये। वह नहीं देख सका कि किसीने उसे मुड़कर देखा भी

या नहीं देखा। वहाँसे वह सीधे ही मन्दिरके लिए चल पड़ा। अब उसे पूरा संसार सूना जान पड़ता है।

'संसार जिन्हें धक्का देकर निकाल देता है, वे भगवान्‌की शरणमें आते हैं।' संत जैसे अपने-आपसे कह रहे थे—'लेकिन कम ही होते हैं जो फिर संसारके पुकारनेपर उधर न दौड़ जायँ। बहुधा वे स्वयं दूसरे मार्गसे उसी संसारको बार-बार पकड़नेका प्रयत्न करते हैं। वैराग्य तो उनकी वस्तु है जो संसारको झटककर आते हैं।'

'बाबा! आप मुझे मन्त्र दे दो।' रामनाथ रोते हुए आग्रह कर रहा था—'मैं अब आपके चरण छोड़नेवाला नहीं हूँ।'

'तुम साधु बनकर क्या करोगे?' संतने पूछा।

'भगवान्‌का भजन करूँगा और आपकी सेवा करूँगा।' रामनाथने बिना किसी संकोचके कहा।

'भगवान्‌का भजन तो ऐसे होता नहीं।' संत समीप ही आसनपर बैठ गये। 'सेवा अवश्य तुम कर सकते हो। इस प्रकार किसीको साधु बनानेका अर्थ बिना मजदूरी दिये एक मजदूर पानेका प्रयत्न करना है।'

'बाबा! भेड़ तो जहाँ जायेगी, वहीं मुँडेगी।' रामनाथको संतकी बात बुरा नहीं लगा। 'मैं घरपर भी मजदूर ही था, आपकी सेवा करूँगा तो पुण्य तो होगा! घरकी मजदूरी तो गधेको अन्न खिलाना भी नहीं रही।'

'लेकिन साधु किसीको केवल अपनी सेवाके लिये साधु बनावे, यह बहुत बड़ा पाप है।' संतने कहा—'साधुका वेश भजनका वेश है।'

" मैं भजन करनेको 'ना' कहाँ कहता हूँ।" रामनाथने आग्रह किया।

" अच्छा तुम यहीं बैठो और रातमें सोनेका समय होने-तक 'राम-राम' कहते रहो। रोटियाँ मैं तुम्हें दे दूँगा।" संतने समझानेका उपाय सोच लिया।

'राम, राम, राम, राम', रामनाथ कबतक 'राम-राम' करता रहे। दो मिनट, चार मिनट, दस मिनट। वह ऊब गया। इधर-उधर देखने लगा। अन्तमें आधे घंटेमें ही उठ खड़ा हुआ। 'आप मुझे कोई सेवा बताओ! इस प्रकार मुझसे बैठे नहीं रहा जायगा।'

'यही मैं कहता था कि भजन इस प्रकार नहीं होता।' संतने समझाया—'भजन करना बहुत उत्तम है; किंतु उसे कायदेसे सीखना पड़ता है। जो घरपर भजन नहीं करता, घर छोड़नेपर उससे भजन नहीं हो सकता। तुम मेरी बात मानोगे?'

'अवश्य मानूँगा।' रामनाथने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया।

'देखो, परदेशमें तुम बराबर भाई, भाभी, भतीजे आदिका स्मरण करते थे। उस समय तुम मोहवश उनका स्मरण करते थे।' संत धीरे-धीरे समझा रहे थे। 'अब भी तुम उन्हींका स्मरण कर रहे हो। अब तुम यह सोच रहे हो कि वे सब कितने निष्ठुर हैं। यदि तुम घर इस समय छोड़ दोगे तो यह स्मरण बना ही रहेगा। यह भी स्नेहका ही फल है और यह तुम्हें जलाता ही रहेगा।'

'पहले भी मैं जलता ही रहा हूँ।' रामनाथको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे लगा कि साधुने उसके चित्तकी बात

जान ली है। उसकी श्रद्धा बढ़ गयी।

'अरे भाई! दियेमें जबतक तेल है, तबतक वह जलेगा ही!' साधु कह रहे थे—'जबतक चित्तमें संसारका स्नेह है, तबतक वह जलता रहेगा। इस स्नेहको निकाल देनेका उपाय यह है कि तुम घर लौट जाओ। अब तुमको घरके लोगोंके प्रेमका रहस्य ज्ञात हो गया है। अब वे फिर जब तुम्हारा आदर-सत्कार करने लगें, तब भूलना मत कि अपने स्वार्थवश ही वे ऐसा कर रहे है। तुम घर-पर काम करो। बचपनसे अबतक उन लोगोंने तुम्हारा पालन-पोषण किया है, उनकी सेवा करना तुम्हारा कर्तव्य है। उनके पास रहकर उनकी सेवा कर्तव्य समझकर करते रहो और भगवान्‌के नामका जप करनेका अभ्यास करो। ऐसा करनेसे भजन होने लगेगा और मनमें जो मोहरूपी स्नेह है, वह दूर हो जायगा।'

'आप मुझे घर न भेजें।' रामनाथ कातर हो रहा था।

'तुम अपनेको आजसे साधु ही मानो।' संतने कहा। 'घरके लोगोंकी सेवा मेरी बात मानकर करो। घरपर ऐसे रहो, जैसे वह तुम्हारा घर नहीं है। तुम वहाँ अतिथि बनकर रहते हो। घर तो उन लोगोंका है। वे जैसा करें, जो चाहें—उनमें तुम उनका अनुमोदन और सहायता करो।'

रामनाथ घर लौट आया। वह गृहस्थ साधु—उसकी शान्ति, उसका आनन्द तबतक कैसे जाना जा सकता है, जबतक स्नेहकी ज्वालासे मुक्त होकर अपने घरमें ही कोई अपनेको स्थायी अतिथि नहीं बना लेता।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंस्थानके प्रका...

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' के ग्रन्थ—

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १...

श्रीद्वारिकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)५...

पार्थ-सारथि (श्रीकृष्णका हस्तिनापुर-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४३६, पक्की जिल्द, मूल्य १२)००
रक्सीनयुक्त (बिना गत्तेकी जिल्द) मूल्य १०)००

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति—डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ९)००

साध्य और साधन (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-१— सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-२— सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

राम-श्यामकी झाँकी भाग-१ —पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

" " भाग-२ पृष्ठ १३२, मूल्य १)७५

श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ ९६, मूल्य १)२५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

व्रजका एक दिन— पाकेट आकार, पृष्ठ ११०, मूल्य १)७५

उन्मादिनी यशोदा—पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)५०

सांस्कृतिक कहानियाँ प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ ..., मूल्य १)००